सिद्धयोग

2017

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

एक प्रति : 25/- द्विवार्षिक : 300/-

प्रकाशन तिथि : 01.06.2017

वर्ष : 50; अंक : 3
जून 2017

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

प्रभु ! पार उतार मुझे

प्रभु रामलाल, दयाल, कृपा करके,
भवसागर से पार उतार मुझे।
तेरे प्यार में इतना खो जाऊँ,
पागल समझे, ये संसार मुझे।।
सुध बुध न रहे इस तन की,
जग का न कोई बन्धन हो।
जिस तरफ जाए ये नजर मेरी,
बस तेय हो दर्शन, तेरा वन्दन हो।।
सब कुछ भुलूं, तेरी याद में झूँलू,
मिल जाए मस्ती की इक धार मुझे।
तेरे प्यार——
जप–तप में मन लीन रहे,
चरणों में नित ध्यान रहे।
डूबार हूँ नित 'चन्द्रानन्द' में,
बस सिद्ध गुफा का भान रहे।।
योग कमाई दिन दूनी बढ़े।
डुबा न सके कोई मझधार मुझे।
तेरे प्यार में———
या जिस हाल में भी तू रखे,
हो वह सब स्वीकार मुझे।
जग में न चाहत हो कुछ भी,
हो बस, तब दर्शन की दरकार मुझे।।
तेरा गुण नित गाते–गाते,
पड़े सुनाई मधुर झनकार मुझे
प्रभु रामलाल दयाल, कृपा करके,
भव सागर से पार उतार मुझे।
तेरे प्यार में इतना खो जाऊँ,
पागल समझे ये संसार मुझे।।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

वर्ष :50
अंक : 3

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

जून
2017

स्वापत्यानि यथा मत्स्यो वीक्षणेनैव पोषयेत्
दृग्भ्यां दीक्षोपदेशश्च तादृशः परमेश्वरि।।

अर्थात्

" जिस प्रकार से मत्स्य अपनी दृष्टि के द्वारा अपने बच्चों का पोषण किया करते हैं। उसी प्रकार गुरुदेव अपनी दृष्टि के द्वारा शिष्यों का पोषण किया करते हैं।"

– योग सिद्धान्त (भाग 2)

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 12
3. श्री मद्भागवत में योग परिचर्चा – विजय सिंह 16
4. गीता तथा पातंजल योग सूत्रों में – श्री द्वारिका प्रसाद शर्मा 19
5. शक्तिपात एवं कुण्डलिनी जागरण – ब्र. सूरज प्रकाश 24
6. अज्ञान नाशक–गुरुज्ञान – श्री कमरुद्दीन कछवा 27
7. गुरु महिमा – अनिल दुबे 29
8. जीवन उद्देश्य को समझो – श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज 32
9. श्री गणाधिपतये नमः – द्वारका प्रसाद शर्मा 36
10. योग आसन 40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

सिद्धकृपा : कब और कैसे?

ब्रह्मलीन योगेश्वर प्रभु श्री चन्द्रमोहनजी महाराज का

अमर सन्देश

सिद्धों की दो श्रेणियाँ हैं–साधन सिद्ध और अनादि सिद्ध। दोनों की कृपायें समान रूप से अधिकारी व्यक्ति पर हुआ करती हैं। एक ओर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, भगवती जगदम्बा आदि नामों से अनादि सिद्ध ईश्वर कृपा करते हैं तो दूसरी ओर उसी ऐश्वर्य से सम्पन्न सिद्ध योगिराज अपने भक्तों पर कृपायें किया करते हैं और जन–साधारण का हर प्रकार से कल्याण करते रहते हैं।

ये कृपायें कब, क्यों और किस प्रकार हुआ करती हैं, यह एक विचारणीय प्रश्न है? इस प्रश्न का उत्तर योग–योगेश्वर (योग के और योगियों के ईश्वर) श्रीकृष्ण ने इन श्लोकों में स्पष्ट रूपेण दिया है–

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।

(गीता 10/9–10)

मुझ परमेश्वर में निरन्तर मन लगाने वाले और मेरे में ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्त–जन सदा मेरी चर्चा द्वारा आपस में मेरे प्रभाव का वर्णन करते हुए तथा मेरा गुणगान करते हुए ही संतुष्ट रहते हैं और मुझ परमेश्वर में ही नित्य रमण करते हैं। उन मेरे ध्यान में लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजने वाले भक्तों को मैं वह तत्वज्ञान रूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए–

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।।

(गीता)

इसलिए तू मुझमें मन लगा, मेरे में ही बुद्धि को लगा। ऐसा करने पर इसके उपरान्त तू मुझमें ही निवास करेगा। इसमें कोई संदेह नहीं है।

जब साधक उपरोक्त प्रकार से परमात्मा को आत्म–समर्पण कर देता है तो उस पर उस सर्व शक्तिमान की कृपायें बरसती ही रहती हैं। परमात्मा कौन? वह है आदि–योगी जिसके लिए शास्त्रों में कहा गया है–

अपाणिपादो जवनो गृहीता,
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता,
तमाहुरग्रं पुरुष महान्तम्।।

वह ईश्वर सबसे बड़ा योगी है और अपने योगैश्वर्य से ही भक्तजनों पर कृपा किया करता है। उस कृपा को पाने के लिए यह आवश्यक है कि साधक अपने इष्टदेव में अनन्य निष्ठा रखे और स्वाध्याय–परायण रहे। योग–दर्शन में एक सूत्र आता है–

स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः।

देवाः सिद्धाः ऋषयश्च, स्वाध्याय–शीलस्य दर्शन गच्छन्ति कार्ये चास्य वर्तन्त इति।

अर्थात् देवता, सिद्ध और ऋषि लोग स्वाध्यायशील व्यक्ति के पास जाकर उसे दर्शन देते हैं और उसकी हर प्रकार से सहायता करते हैं।

स्वाध्याय और सिद्धकृपा

स्वाध्यायशील व्यक्ति पर सिद्ध लोग किस प्रकार कृपायें किया करते हैं। इस सम्बन्ध में मुझे एक घटना याद आ रही है और वह इस प्रकार है–

आज से कई वर्ष पूर्व ज्योतिप्रकाश आश्रम नामक एक जिज्ञासु व्यक्ति सिद्धों के दर्शनार्थ ऋषिकेश से चलकर गंगाजी के तटवर्ती वनों को पार करते हुए घोर जंगल में पहुँच गये और कई दिनों तक भूखे–प्यासे वहाँ भटकते रहे। उनकी दयनीय स्थिति पर द्रवित होकर एक ब्रह्मचारीजी उनके सामने प्रकट हुए और उनसे पूछा कि–तुम कौन हो और कहाँ से आये हो? उन्होंने उत्तर दिया–मेरा नाम ज्योतिप्रकाश आश्रम है और मैं सिद्धों के दर्शन के लिए यहाँ आया हूँ। मैं यह निश्चय करके आया हूँ कि मेरा शरीर भले ही न रहे किन्तु मैं सिद्धदर्शन किये बिना नहीं लौटूँगा।

इस प्रकार ब्रह्मचारीजी बोले–सिद्ध लोग तो ऋषिकेश में भी बहुत रहते हैं, तुम्हें यहाँ आने की क्या आवश्यकता थी? अच्छा, बताओ तुम्हारा स्वाध्याय क्या है? अब तक कितना मन्त्र जाप कर चुके हो और उपनिषदों का कितना अध्ययन किया है? ज्योति प्रकाश ने उत्तर दिया–

महाराज! मैंने अब तक किसी प्रकार का स्वाध्याय नहीं किया है? ब्रह्मचारीजी बोले–तो तुम सिद्ध–दर्शन के अधिकारी नहीं हो, जाओ यहाँ से लौट जाओ।

ज्योतिप्रकाश ने पुनः दीन भाव से निवेदन किया–महाराज! मैं यह निश्चय करके आया

हूँ कि–''**कार्यं वा साधयामि देहं वा पातयामि**'' के अनुसार सिद्ध–दर्शन किये बिना मैं यहाँ से लौट नहीं सकता।

ब्रह्मचारीजी प्रसन्न होकर बोले–अच्छा, तुम्हारा यदि यही निश्चय है तो एक वर्ष तक इस पेड़ के नीचे बैठकर अमुक मन्त्र का जाप करते रहो और उसे एक जड़ी दिखाकर बोले–तुम इस जड़ी का सेवन करते रहो। इससे तुम्हें भूख–प्यास नहीं सतायेगी तथा तुम्हारा बल भी क्षीण नहीं होगा। एक वर्ष बाद हम पुनः मिलेंगे और तुम्हारी योग्यता देखकर तुम्हें सिद्ध–दर्शन करा देंगे।

स्वामी ज्योति प्रकाश आश्रम उन ब्रह्मचारी जी की आज्ञानुसार एक वर्ष लगातार मन्त्र–जाप करते रहे। इस बीच उन्होंने घोर तप किया। ठीक एक वर्ष बाद उन्हें उसी स्थान पर उक्त ब्रह्मचारी जी मिले और बोले–अब तुम सिद्धदर्शन के अधिकारी हो गये हो। चलो मेरे साथ, तुम्हें दर्शन करा दूँ। वे उन्हें अपने साथ ले गये और उन्हें बहुत लम्बे डील–डौल वाले एक योगी के दर्शन कराते हुए बोले–ये सिद्ध योगिराज मेरे गुरुदेव हैं। ये आजकल समाधि में हैं। सौ वर्ष के बाद ये एक दिन के लिए समाधि से उठते हैं। स्वामी ज्योति प्रकाश आश्रम ने पूछा–इनकी कितनी समाधियाँ आप देख चुके हैं?

उन्होंने उत्तर दिया–सात।

इसके बाद ब्रह्मचारी जी ने उन्हें आज्ञा दी–अब तुम यहाँ से लौट जाओ और उपनिषदों का अध्ययन करते रहो। अब तुम्हें ऋषिकेश में भी सिद्धदर्शन होते रहेंगे। स्वामी ज्योति प्रकाश आश्रम ने वहाँ से लौटकर बिजनौर में पण्डित भगवतदत्त श्रोत्रिय से उपनिषदों का अध्ययन किया और कुछ समय में ही वे प्रकाण्ड विद्वान बन गये। इसके बाद फिर उनका पता नहीं चला कि–वे कहाँ चले गये। इस प्रकार का स्वाध्यायशील व्यक्ति ही सिद्ध–कृपा का उत्तम अधिकारी होता है।

अनन्य भक्ति और सिद्धकृपा

भजनं सेवनं भक्तिः। भजन करना–सेवा करना, अपने इष्ट को आत्म–समर्पण करना भक्ति कहलाती है।

आम लोगों को प्रायः यह शंका रहा करती है कि–उस पर इतनी कृपा क्यों और मुझ पर क्यों नहीं? मेरे साथ वैसे चमत्कारपूर्ण घटनायें क्यों नहीं होतीं जैसे फलाने के साथ घटित होती रहती हैं। ऐसे लोगों के लिए सीधा सा उत्तर है।

तुम लोग वहाँ हो ही नहीं जहाँ इस प्रकार के काम हुआ करते हैं। तुम लोग तो परीक्षा लेने वाले हो और सोचा करते हो कि–''यदि मेरा अमुक काम हो जाये तो मान जाऊँगा कि योगी लोग शक्ति वाले हुआ करते हैं।'' तुम मत मानो। वे तो जो कुछ हैं, हैं ही। तुम्हारे मानने या ना मानने से उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

बजाय इस प्रकार की भावना रखने के ऐसे लोगों को अपने मन में यह विचार करना चाहिए कि—क्या उनका हृदय प्रेम से परिपूरित रहता है। क्या उनके अन्दर अनन्य निष्ठा है? क्या उनके चिन्तन में इष्टदेव के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता? यदि ऐसा है तो उन पर अवश्य कृपायें हुई होंगी और अवश्य चमत्कार हुए होंगे और होते रहेंगे।

वाणी का समर्पण तो हर व्यक्ति कर सकता है। तुम भी मुँह से भले ही कहते रहो—महाराज जी आप ही मेरे सब कुछ हैं, आपके सिवा मेरा कोई नहीं है किन्तु व्यवहार इससे विपरीत हो तो ऐसे प्रणिधान से कोई लाभ नहीं है। यदि तुम्हारे अन्दर अनन्य निष्ठा है तो तुम्हारे कहे बिना ही वहाँ तक खबर पहुँच जायेगी और तुम्हारे इष्टदेव का मन स्वयं ही जान जायेगा, कि सचमुच इसका मेरे सिवा कोई नहीं है। ऐसी स्थिति में उनका मन तड़प उठेगा कि इसका अमुक कार्य हो ही जाना चाहिए और वह कार्य अवश्य हो जायेगा। गीता का वचन है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां
ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां
योग क्षेमं वहाम्यहम्।।

इस श्लोक के अन्दर जगदात्मा श्रीकृष्ण ने यह घोषणा की है कि जो लोग अनन्य निष्ठा से मुझ परमेश्वर की उपासना करते हैं उनके योग क्षेम का भार मैं स्वयं वहन करता हूँ। अर्थात् उन्हें जिस चीज की भी आवश्यकता होती है वह मैं उन्हें दे देता हूँ और जो कुछ उन्हें प्राप्त हो रहा है उसकी रक्षा भी मैं स्वयं करता हूँ।

भक्तिभाव वाले लोगों ने जहाँ ईश्वर को आत्म–समर्पण किया वहाँ वे इस अवस्था में पहुँच गये—

ना मैं देखूँ और को, और न देखन देहुँ।

यहाँ तो इस अवस्था में यह सिद्धान्त लागू हो जाता है—

यो मां पश्यति सर्वत्र, सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि, स च मे न प्रणश्यति।।

—गीता

अर्थात् जो व्यक्ति मुझ परमात्मा को सब जगह देखता है और सब कुछ मुझ परमेश्वर के अन्दर व्याप्त देखता है उसके लिए मैं कभी नष्ट नहीं होता हूँ और मेरे लिये वह नष्ट नहीं होता। ऐसी स्थिति जब साधक के अन्दर आ जाती है तब वह तुरीयावस्था में रहता है। इसी अवस्था को सम्प्रज्ञात योग की दूसरी श्रेणी अर्थात् विचारानुगत समाधि कहा जाता है। इस अवस्था में प्रेमी का हृदय प्रेमास्पद के प्रेम में इस कदर परिपूरित रहता है कि एक प्राण और दो शरीर वाली बात हो जाती है। ऐसी अवस्था में ही कृपायें और चमत्कार हुआ करते हैं।

मुझे इस बात से सम्बन्धित कई घटनायें याद आ रही हैं। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी की

कृपा से आदरणीय भाई मुलखराज जी महाराज आठ महीने तक लगातार तुरीयावस्था में रहे। उनकी आँखें हर समय बन्द रहा करती थीं फिर भी वे अपने लौकिक व्यवहार में कोई त्रुटि नहीं आने देते थे। यहाँ तक कि भीड़ भरे बाजारों में आँखें मूँदे चला करते थे किन्तु क्या मजाल कि कभी किसी प्रकार की दुर्घटना हो जाये। एक बार किसी भाई ने श्री प्रभुचरणारविन्दों में निवेदन किया—

'महाराज! यह बात समझ में नहीं आती कि भाई मुलखराज जी भीड़ भरे बाजार में आँखें बन्द किये हुए चलते हैं और कभी कोई दुर्घटना नहीं होती, हम लोग बहुत सम्भल-सम्भल कर चारों ओर देखकर चलते हैं फिर भी कई बार चोट खा जाते हैं। इसका क्या कारण है?'

इस पर श्री प्रभुजी मुस्कराते हुए बोले—''उसे चलाने वाला ड्राइवर इतना होशियार है कि उसके मुकाबले का कोई और हो ही नहीं सकता। वही उसे भारी से भारी भीड़ में से सुरक्षित निकालकर ले जाता है।''

कुछ दिन पश्चात् श्री प्रभुजी भाई मुलखराज जी और गोपालानन्द जी को उसी अवस्था में कांगड़ा की किसी पहाड़ी पर ले गये। उनके साथ काफी संख्या में गृहस्थी लोग भी थे। लौटते समय कुछ लोग अधीरतापूर्वक बोले—महाराजजी! शाम हो गई है। आपके अन्धे बच्चे कैसे चलेंगे? हम तो जैसे-तैसे चले जायेंगे, पर बुढ़ापे के कारण इनसे तो वैसे ही नहीं चला जाता, फिर बन्द आँख और शाम का समय। बड़ी परेशानी वाली बात होगी!

श्री प्रभुजी बोले—क्या इन्हें पहाड़ से धकेल दूँ; वे लोग चुप हो गये। श्री प्रभुजी बोले—अच्छा, तुम लोगों की यही इच्छा है तो इन्हें धकेल ही देता हूँ। यह कहकर प्रभुजी ने उन दोनों को पहाड़ की चोटी पर खड़ा करके पहाड़ी से नीचे धकेल दिया। लोगों को यह आशंका हुई कि वे मर जायेंगे, पर यह देख कर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि वे दोनों बड़ी तीव्र गति से आगे बढ़े जा रहे हैं। श्री मुलखराज जी आकाश से नीचे उतरते हुए पक्षी की तरह उड़े जा रहे हैं और श्री गोपालानन्द जी मेंढ़क की गति से उछलते हुए आगे बढ़ते जा रहे हैं। वे दोनों बहुत जल्दी अपने गन्तव्य स्थल पर पहुंच गये, जबकि वे डींगे मारने वाले नौजवान गृहस्थी लोग दो घण्टे बाद वहाँ पहुँचे। श्री प्रभुजी भी उन्हीं के साथ थे। आते ही बोले—क्यों हमारे अँधे बच्चे! तुम लोगों से पहले पहुँच गये न?

वे लोग सकुचाते हुए बोले—हाँ महाराज आप ठीक कहते हैं।

प्रतिस्पर्द्धा वाली भावना प्रायः सभी में रहा करती है। स्पर्द्धा या ईर्ष्या वे लोग ही करते हैं जो गुरु को गुरु नहीं समझते। उन लोगों के मनों में ही क्यों और कैसे वाले प्रश्न उठा करते हैं।

एक बार आनन्दकन्द प्रभुजी अपने कुछ शिष्यों के साथ नेपाल में विराजमान थे। वहाँ एक वृद्ध हर क्षण उनकी सेवा में तत्पर रहा करता था। कुछ लोग उससे चिढ़ते थे कि वह बूढ़ा हर बात में आगे रहता है, हमें कुछ भी सेवा नहीं करने देता।

उन्होंने उसे प्रभुजी के चरणार्विन्दों से दूर करने के कई प्रयास किये, किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। अन्त में एक बार कन्दमूल लाने का प्रश्न आया। उन्होंने सोचा कि अमुक पहाड़ पर कन्दमूल तो बहुत हैं किन्तु वहाँ एक अघोरी रहता है, वह किसी को कन्दमूल लेने नहीं देता। अतः इस बूढ़े को यह काम सौंपा जाये। ऐसा विचार कर उन्होंने प्रभुजी से निवेदन करके उस वृद्ध सेवक को जंगल में भिजवा दिया।

उस स्थान पर पहुंचकर ज्यों ही उस वृद्ध ने कन्दमूल उखाड़ने की चेष्टा की, अघोरी ने दूर से ही उसे देख लिया। उसने उस पर शक्ति–परीक्षण किया, पर उसे कोई सफलता नहीं मिली। उसने मन में विचार किया कि "आज तक कोई मुझसे बचकर नहीं जा सका है, किन्तु इसके आगे मेरी शक्ति निष्क्रिय हो गई है, निश्चित ही यह कोई सिद्धपुरुष है।"

वह उसके पास जाकर बोला–तुम पहले आदमी हो जो मुझसे बचकर जा रहे हो। मालूम पड़ता है कि तुम किसी बहुत बड़े योगिराज के शिष्य हो। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ और तुम्हें कुछ देना चाहता हूँ। बोलो क्या माँगते हो?

वृद्ध गम्भीर वाणी में बोला–"मुझे कुछ नहीं चाहिए। तुम्हें यदि कुछ आवश्यकता हो तो मुझसे मांगो।" अघोरी आश्चर्यचकित होकर उस वृद्ध के बारे में विचार करने लगा तो उसने देखा कि प्रभुजी का वरदहस्त उस वृद्ध के सिर पर है और वे मुस्कराते हुए कह रहे हैं–बेटा! तुम इस अघोरी को जो कुछ देना चाहो दे सकते हो। तुम चाहो तो इसे अजर–अमर भी कर सकते हो। यह देख अघोरी हाथ जोड़कर उस वृद्ध से बोला–महाराज! मेरे पास से आज तक कोई खाली नहीं गया। आपके न चाहते हुए भी मैं आप को वाक् सिद्धि का वरदान दे रहा हूँ, कृपया इसे स्वीकार कीजिए।

उसने स्वयं खोदकर उस वृद्ध को कन्दमूल दे दिये। उन्हें लेकर वह वृद्ध प्रभुजी के पास लौट आया। जब सत्संगियों को पता चला कि यह वृद्ध कन्दमूल सहित सुरक्षित ही नहीं लौटा, अपितु अघोरी से वरदान भी लेकर आया है तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे उसे चिढ़ाने के लिए कहने लगे–"तुम तो वरदान लेकर क्या आये हो अपने लिए चौरासी लाख का चक्कर खरीद लाये हो।" उन्होंने प्रभुजी से भी निवेदन किया कि प्रभुजी! यह तो अघोरी से वरदान लेकर अपने लिए मुसीबत खरीद लाया है। अब यह किसी को वरदान देगा और किसी को अभिशाप। बस, इसी चक्कर में उलझा रहेगा, निश्चित ही इससे इसका पतन हो जायेगा।

इस पर प्रभुजी मुस्कराये और बोले–अघोरी ने दिया और हमने ले लिया। उसने वरदान तो इसे दिया है, किन्तु होगा वह जो हम चाहेंगे। उस वृद्ध की निष्काम भक्ति को देखकर प्रभुजी का हृदय इतना आह्लादित हुआ कि उन्होंने उसे उसी समय समाधि दे दी और कहा कि बेटा! अब तुम समाधि में लीन रहा करो।

ये घटनायें वहीं घटित हुआ करती हैं, जहाँ ऐसे भक्त होते हैं, जो अपने इष्टदेव को आत्म–समर्पण करके उन्हीं में अपने को खो देते हैं। ऐसी स्थिति में सर्व शक्तिमान इष्ट का

मन सदा अपने भक्त के साथ रहा करता है और उनकी सारी शक्तियाँ भी उस भक्त के साथ रहा करती हैं।

पुण्य संग्रह और सिद्ध-कृपा

सिद्धों का कृपा-भाजन बनने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य पुण्यों का संग्रह करता रहे। योग-शिखोपनिषद में कहा गया है-

पश्चात्पुण्येन लभते, सिद्धेन सह संगतिम्।
ततः सिद्धस्य कृपया, योगी भवति नान्यथा।।
ततो नश्यति संसारोऽयं, नान्यथा शिव भाषितम्।।

इसका अभिप्राय है कि यदि मनुष्य यज्ञ करता है, दान करता है, तप करता है, ध्यान धारणायें करता है और किसी प्रकार के भी पुण्य-कृत्य करता है तो उसका भी फल यह होता है कि कालान्तर में पुण्यों के बढ़ जाने पर उस पर सिद्ध-कृपा हो जाया करती है। जिससे वह स्वयं योगी बन जाता है और संसार-चक्र से छूट जाता है।

अतः मनुष्य को अपना पुण्यों का खजाना बढ़ाते रहना चाहिए। पुण्य इतने बढ़ जायें कि मनुष्य उनके प्रति निष्काम हो जाये। पुण्यों के प्रति निष्काम हो जाने का एक ही तरीका है जिसे ईशावास्योपनिषद् के इस मन्त्र में बतलाया गया है-

कुर्वन्नेवेह कर्माणि, जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयिनान्यथेतोऽस्ति, न कर्म लिप्यते नरे।।

अर्थात् मनुष्य कर्म करता चला जाये, वह अपनी सौ वर्ष की जिन्दगी कर्म करते हुए व्यतीत करे। इस प्रकार कर्मरत रहता हुआ मनुष्य निष्काम बन जाता है और वह कर्म-बन्धन से मुक्त हो जाता है।

जो मनुष्य कर्म नहीं करता, अलड्-आलसी बनकर पड़ा रहता है वह एक प्रकार से ईश्वर का अपराधी है, क्योंकि वह पड़ा-पड़ा तरह-तरह के दुश्चिन्तन करता रहता है, जिससे वायु-मण्डल भी दूषित बन जाता है। भगवान ने गीता के अन्दर अपने मुखारविन्द से स्पष्ट कहा है-

आरूरूक्षो मुनेर्योगं, कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढ़स्य तस्यैव, शमः कारण उच्यते।।

जो मनुष्य योगारूढ़ होना चाहता है वह प्राणायाम करता है, ध्यानाभ्यास करता है, तप करता है। इस प्रकार पुण्यमय कर्मों में रत होकर वह योगारूढ़ होता है और योगारूढ़ हो जाने पर शान्ति ही उसका कारण बन जाती है। अर्थात् वह शाश्वत् शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

अतः मनुष्य को तप करना चाहिए, स्वाध्याय करना चाहिए। जो मनुष्य तपस्वी है, स्वाध्यायशील है, उस पर सिद्ध-कृपा अवश्य हुआ करती है।

इस सम्बन्ध में मुझे एक घटना याद आ रही है। वह इस प्रकार है–

एक लड़का था। उसका नाम था ओमप्रकाश। पुण्य संस्कारवश उसके हृदय में भगवान कृष्ण के प्रति प्रेम पैदा हो गया। वह वृन्दावन चला गया और एक पेड़ के नीचे बैठकर अरसठ दिन तक उपवास करता रहा। उस पर किसी सिद्ध की कृपा हो गई जिससे उसे गोलोक धाम के दर्शन होने लग गये। दूर–दूर के व्यक्ति उसके पास आया–जाया करते थे। वह उन्हें यमुना जी का जल उठा कर दे देता था, जिससे उनके कष्टों का निवारण हो जाता था।

इसी प्रकार की एक अन्य घटना है–

एक बार मुझे श्री वृन्दावन में मोतीझील पर एक नवयुवक लड़का मिला। उसकी आँखें ऊपर की ओर चढ़ी हुई थीं। हमने उसे उठाया और पूछा–भाई तुम्हारी क्या स्थिति है?

वह बोला–महाराज जी! यदि आपने मुझे न जगाया होता तो अच्छा था। खैर! आप मेरी स्थिति जानना चाहते हैं तो सुनो–मुझे श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखाई देता। जिस ओर दृष्टि डालूँ उधर श्री श्यामसुन्दर ही नजर आते हैं।

मैंने पूछा–क्या ये सामने के पेड़ तुम्हें नजर आ रहे हैं?

वह बोला–नहीं!

मैंने पुनः प्रश्न किया–क्या मैं दिखाई दे रहा हूँ। वह बोला–आप मुझसे बात कर रहे हैं इसलिए कुछ झलक सी दिखाई दे रही है, किन्तु आपके अन्दर भी मुझे श्रीकृष्ण ही नजर आ रहे हैं।

मैंने उससे पूछा–तुम्हें यह स्थिति कैसे प्राप्त हो गई? उसने उत्तर दिया–आज से कुछ समय पूर्व मैंने यहाँ एक रासलीला देखी उसमें श्रीकृष्ण की आकृति मुझे बहुत मोहक लगी। मैंने उनका चित्र लेना चाहा किन्तु रासधारियों ने मना कर दिया। मैं निराश होकर एक शिवालय में चला गया और वहाँ शिव मन्त्र का जाप करता रहा। तीसरे दिन प्रातः काल मेरे साथ एक चमत्कार पूर्ण घटना हुई। मैं पूर्ण एकाग्रता के साथ जप कर रहा था कि–अचानक ही शिव लिंङ्ग के ऊपर से एक माला उठी और मेरे गले में आ गिरी। इसके साथ ही मुझे यह आवाज सुनाई दी, 'मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। जाओ अब तुम्हें सर्वत्र ही श्रीकृष्ण के दर्शन होते रहेंगे। रासधारियों ने उस समय श्रीकृष्ण का चित्र लेने से मना कर दिया था किन्तु अब वे ही रासधारी तुम्हें चित्र भी दे देंगे।'

उसने आगे बताया कि–मैं भगवान शिव की आज्ञा पाकर उन्हें प्रणाम करके ज्यों ही शिवालय से बाहर निकला तो दरवाजे के निकट ही मुझे वे रासधारी मिल गये और बोले–'प्यारे भैया! तुम कहाँ चले गये थे? हमने तुम्हारी बड़ी खोज की। तुम श्रीकृष्ण का चित्र लेना चाहते थे। अब ले लो!' यह कहकर उन्होंने चित्र दे दिया। उसे लेकर मैं यहाँ चला आया। तब से लेकर मुझे श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता।

यह क्या था? अनादि सिद्ध भगवान शिव की कृपा, उनका शक्तिपात, जिसके फलस्वरूप

उसे दिव्यदृष्टि प्राप्त हो गई।

यह एक अटल सिद्धान्त है कि मनुष्य का उद्धार सिद्ध–कृपा से ही होता है और वह कृपा भी हर व्यक्ति पर नहीं हुआ करती, क्योंकि सबके इतने पुण्य नहीं होते। पुण्यों का खजाना जमा करना भी हर व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। क्योंकि एक व्यक्ति जनहित के लिए कुआँ खुदवाता है, मन्दिर बनवाता है, अस्पताल खुलवाता है या इसी प्रकार के अन्य पुण्यकर्मों को करता है और कहता है कि–"भाई! फल की तो मुझे इच्छा नहीं है, मुझे करना था कर दिया।" उसका इतना कहना भी पुण्य के फल को समाप्त करने के लिए काफी है। क्योंकि–"मैंने करना था कर दिया" इस बात में भी फलासक्ति छिपी हुई है और अहंकार प्रकट होता है।

इसलिए मनुष्य को तप करना चाहिए, मन्त्र जाप करना चाहिए, शास्त्रों का मनन करना चाहिए और ये सभी काम नियमानुवर्तिता से करना चाहिए। जो मनुष्य नियम का पक्का है, वह कालान्तर में निष्काम बन जाता है। उसके अन्दर सतोगुण का पूर्ण विकास हो जाता है। सतोगुण बढ़ जाने पर साधक का हृदय प्रेम का पुतला बन जाता है किसी प्रकार की लौकिक–कामना उसके अन्दर नहीं रहती, उसकी यह स्थिति बन जाती है कि–जिसके लिए नानकदेवजी ने लिखा है–

नाम खुमारी नानका, चढ़ी रहत दिन रात।

ऐसी स्थिति में प्रणिधान (आत्म–समर्पण) स्वयं ही हो जाता है। प्रणिधान का लक्षण है–

सर्वकर्मणां परमगुरालीश्वरे, अर्पणं तत्फलसंन्यासो वा।

अपने समस्त कर्मों को परम गुरु ईश्वर के अर्पण कर देना अथवा उनके फल का त्याग करना प्रणिधान कहलाता है।

प्रणिधान (आत्म–समर्पण) हो जाने पर इष्टदेव के हृदय में अपने उपासक के कल्याण के लिए जो भी संकल्प उठता है वही उसके उद्धार का कारण बन जाता है। अतः सिद्ध कृपा भाजन बनने के लिए मनुष्यों को पुण्य संग्रह करते रहना चाहिए तथा जप, तप एवं ध्यानाभ्यास के द्वारा वह स्थिति प्राप्त कर लेनी चाहिए जिसमें कि–

सुनत न काहू की कही,
कहत न अपनी बात।
नारायण वा रूप में,
मगन रहत दिन रात।।

कबिरा नौबति आपनी, दिन दस लेउ बजाय।
यह पुर पट्ठन यह गली, बहुरि न देखहु आय।।

– सन्त कबीर

सम्पादकीय–

21 जून 2017 तृतीय विश्व योग दिवस पर विशेष

– आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज

श्री सिद्धगुफा संवाई (एत्मादपुर) आगरा योग प्रशिक्षण केन्द्र के रूप में सुविख्यात है। आश्रम पवित्र गुफा की स्थापना अलौकिक शक्ति सम्पन्न योगी प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के द्वारा हुई है। यह सिद्ध गुफा सन् 1911 में बनाई गई थी। उस समय से इन महायोगी श्री रामलाल जी ने साधकों के लिए साथ ही रूग्ण लोगों के लिए भी आसन, प्राणायाम, जीवन तत्व साधन की क्रियाएं और षटकर्म के अभ्यास का क्रम प्रारम्भ कर दिया था।

जीवन तत्व साधन के अन्तर्गत नौ क्रियाएँ हैं। यह प्रभुजी की अद्‌भुत देन है। जिनमें सभी योगासनों का समुच्चय है। उस समय में नेति आदि क्रियाओं के विषय में जन सामान्य में कोई जानकारी नहीं थी। केवल आयुर्वेद के ग्रन्थों में वर्णन मिलता है। सिद्धगुफा संवाई आश्रम में नेति आदि षट कर्मों का अभ्यास कराकर रोगों का इलाज कराया जाता था और प्रभुजी योग अभ्यास के बाद साधकों को लौकी आदि कच्ची सब्जियाँ और भिगोई हुई (unboiled) दालें खिलाते थे। योग–ध्यान की उच्च स्थिति वाले अनेक साधक यहाँ रहकर साधना करते थे।

सन् 1940 के लगभग सिद्धगुफा संवाई पर प्रभु श्रीराम लाल जी महाराज के प्रमुख शिष्य योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज आ गये थे और प्रभुजी के निर्देशानुसार योग के प्रचार और प्रसार के इस अभियान को आगे बढ़ाया। आस–पास के क्षेत्रों में योग का प्रचार किया साथ ही भारत में विभिन्न क्षेत्रों का भ्रमण कर योग का व्यापक प्रचार–प्रसार किया, और असंख्य लोगों को योग की शिक्षा–दीक्षा देकर योग मार्ग पर अग्रसर किया। सिद्धयोग परम्परा शक्तिपात की परम्परा है। गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से दीक्षा प्राप्त कर अनेक साधकों ने योग की दिव्य अनुभूतियों का अनुभव किया और अन्यों को भी प्रेरित किया।

गुरुदेव से श्री राज नारायण ने भी दीक्षा ली थी। आपके आशीर्वाद से जनता पार्टी सरकार में राजनारायण स्वास्थ्य मंत्री बनाये गये। स्वास्थ्य मंत्रालय के अन्तर्गत ही योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा विभाग था। उसमें योग के प्रसार हेतु राज नारायण ने महाराज जी से प्रार्थना की। योग के क्रियात्मक पक्ष को आगे बढ़ाने के लिए योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज को योग के तकनीकी विभाग का अध्यक्ष बनाया गया था। देश भर की योग संस्थाओं को भारत सरकार की ओर से अनुदान दिया जाता था, जिसकी संस्तुति अध्यक्ष के द्वारा ही

होती थी। लगभग दो वर्ष गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी इस विभाग के अध्यक्ष रहे। उसी समय योजना बनी थी कि विद्यालयों में भी योग को एक विषय के रूप में सम्मिलित किया जाये। कालान्तर में धीरे–धीरे यह लागू हो रहा है। जिसका सूत्रपात उस समय किया जा चुका था। अब तो अनेक योग टीचर्स ट्रेनिंग संस्थान भी खुल गये हैं। अनेक संस्थानों एवं महाविद्यालयों में योग में एम. ए. तथा पी. एच. डी. आदि उपाधि हेतु अध्ययन की सुविधा है। जिसकी भूमिका पहले बन चुकी थी। राज नारायण ने स्वास्थ्य मंत्री रहते सर्व प्रथम आयुर्वेद के विकास हेतु भी योजनाएँ शुरू कराई थीं।

गुरुदेव ने योग विद्या को जन जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से अनेक पुस्तकें प्रकाशित कीं जिनमें सचित्र, योगासन, जीवन तत्व साधन, नेतिक्रिया की पुस्तकें प्रकाशित कराई गईं और सामान्य जनता को सरल भाषा में योग के बारे में पुस्तकें उपलब्ध करायीं गयीं। योगी गोपालानन्द जी ने सन् 1930 में नेति ट्रेक्ट नाम से पुस्तक उस समय प्रथमबार लाहौर से प्रकाशित कराई थी जिसमें नेति के अभ्यास से लाभान्वित हुए अनेक लोगों का वर्णन भी है। इनमें एक अंग्रेज का भी पत्र छपा है कि नेति क्रिया करने से उसकी जुकाम की गम्भीर समस्या दूर हो गई थी। यह पुस्तक अपने में अद्वितीय है। नेतिक्रिया पर इस प्रकार की कोई पुस्तक छपी नहीं है।

हमारे आश्रम में महापुरुषों के जन्म दिवस को आज से लगभग 50 वर्ष पहले ही योग महामेला के रूप में मनाया जाता रहा है। गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा प्रभु श्री रामलालजी महाराज का पावन जन्मोत्सव श्रीराम नवमी पर 'योग महा मेला' के रूप में मनाये जाने की परम्परा वर्तमान में भी चल रही है। यह परम्परा बहुत प्राचीन है इसी सन्दर्भ में संवाई के श्री अशर्फीलाल का प्रभुजी को भेजा गया पत्र भी मिला है जो डाक से भेजा गया था इसमें सन् 1913 में संवाई में योग महामेला मनाने की चर्चा की गई है। वर्तमान समय में अन्य संस्थानों में योग मेलों के आयोजन अब प्रारम्भ हुए हैं। जबकि हमारे आश्रमों में यह पुरानी परम्परा है। 'सिद्ध योग' पत्रिका के प्रकाशन को भी पचास वर्ष पूरे हो गये हैं। हमारे आश्रमों में साधकों या रोगियों से क्रियाएं सिखाने की कोई फीस नहीं ली जाती है। निःशुल्क ही सिखाने की परम्परा चली आ रही है। गुरुदेव ने स्त्री–पुरुष का भेद किये बिना सभी को योग विद्या सिखाई। विदेशी भी योग सीखने आये। अनेक साधक योग मार्ग की उच्च स्तरीय स्थिति को प्राप्त हुए।

सन् 1950–60 के दशक में श्री धीरेन्द्र ब्रह्मचारी जी और जम्मु कश्मीर वाले श्री हरिभक्त चैतन्य जी ने भी योग के प्रचार प्रसार के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया है। श्री हरिभक्त चैतन्य जी सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से दीक्षित बच्चे थे और धीरेन्द्र ब्रह्मचारी भी पूज्य गुरुदेव के प्रति आदर और श्रद्धा का भाव रखते थे।

विश्व योग सम्मेलन

भारत में, देश की आजादी के बाद अनेक योग सम्मेलनों के आयोजन दिल्ली, कलकत्ता

आदि स्थानों पर होते रहे हैं। जिनमें गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जी की महनीय भूमिका रही है। दिल्ली में सन् 1986 में 29, 30 व 31 दिसम्बर को विश्वयोग सम्मेलन आचार्य भगवान देव जी के द्वारा संयोजित कराया गया था जिसमें मुख्य सत्र को अध्यक्षता गुरुदेव जी ने की थी। उसी समय तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह ने गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज को "योग शिरोमणि" की उपाधि से विभूषित किया। सन् 1986 से पहले भी अनेक विश्व योग सम्मेलन हुए हैं जिनमें गुरुदेव की विशेष भूमिका रही है। गुरुदेव ने जीवन पर्यन्त भारत का व्यापक भ्रमण कर योग मेलों तथा योग सम्मेलनों के आयोजन कराकर योग के प्रति आम आदमी में जिज्ञासा उत्पन्न करने हेतु वातावरण सृजन किया, संगीत (शास्त्रीय व उपशास्त्रीय) को प्रोत्साहन दिया। वर्तमान में प्रभुजी तथा गुरुदेव जी के नाम कई स्थानों पर संगीत विद्यालय भी चल रहे हैं।

सिद्धगुफा संवाई आश्रम परम्परा की अनेक शाखाएँ

श्री सिद्धगुफा संवाई योग आश्रम की अनेकों शाखाएँ देश में योग प्रचार के कार्य में कार्यरत हैं और उल्लेखनीय प्रगति की है। योग की शिक्षा के द्वारा लोगों के उत्तम स्वास्थ्य हेतु महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है। पंजाब व हरियाणा में तो इस परम्परा की शाखायें प्रायः हर शहर में स्थापित हैं। सन् 1930 में स्थापित योग साधन आश्रम रेलवे रोड ऋषिकेश; योग शिक्षण केन्द्र आर. के. पुरम सेक्टर–चार, दिल्ली; योग संस्थान राजाजीपुरम लखनऊ; इटावा (योग आश्रम व गऊशाला); सहारनपुर, फिरोजाबाद; करनाल, वाराणसी (मोहन सराय); मण्डी (हिमाचल प्रदेश); गंगापुर सिटी (राज.); घरौण्डा (पानीपत) आदि आश्रम उल्लेखनीय हैं। सैंकड़ों की संख्या में आश्रम प्रायः सभी प्रमुख स्थानों पर कार्यरत हैं।

हमारी परम्परा के योग केन्द्रों की एक विशेषता यह भी है कि योग के सभी आठ अंगों (अष्टांग योग) पर जानकारी दी जाती है। योग के बहिरंग साधनों के साथ–साथ मन की शान्ति तथा आत्म लाभ के लिए ध्यान, धारणा व समाधि की भी शिक्षा दी जाती है। प्रतिदिन आश्रमों पर प्रातः व सायं आरती, गीता पाठ, आसन, प्राणायाम तथा नियमित रूप से ध्यान करने पर बल दिया जाता है। संवाई आदि आश्रमों में प्रतिदिन गीता पाठ की परम्परा है। गीता अनूठा योग शास्त्र है। जिसमें भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा कि अर्जुन योगी बनो। गुरुदेव का निर्देश है कि प्रतिदिन नियत समय पर नियमित रूप से ध्यान में बैठना चाहिए। गुरुदेव द्वारा रचित "योग सिद्धान्त" ग्रन्थ में योग के विभिन्न पहलुओं और आयामों पर सुन्दर वर्णन है। गत पचास वर्षों से प्रकाशित 'सिद्ध योग' पत्रिका के माध्यम से भी जानकारी जन सामान्य को सुलभ कराई जा रही है।

गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने क्षेत्रों में व्यापक भ्रमण कर योग प्रचार के कार्यक्रम चलाये। योग प्रचार कार्यक्रमों/शिविरों की यह परम्परा वर्तमान में भी व्यापक स्तर पर चल रही है। प्रयाग राज (इलाहाबाद) में कुम्भ मेला/ माघ मेलों में योग शिविर, ऋषिकेश में

गंगा दशहरा पर्व, प्रतिवर्ष गंगापुर सिटी, दतिया, ग्वालियर, घरौण्डा (करनाल) अलुपुर धाम, मण्डी (हि.प्र.) आदि अनेक स्थानों पर योग प्रचार कार्यक्रम चल रहे हैं। सोशल मीडिया में वाट्स एप ग्रुप, फेसबुक, वेबसाइट्स इन्टरनेट आदि का उपयोग करते हुए विशेष रूप से नई पीढ़ी के साधक सक्रिय हैं।

योग एवं विश्व शांति

आज दुनिया में वैज्ञानिक आविष्कारों की सुलभता और संसाधनों की प्रचुरता है। इसके बावजूद आज बड़ी संख्या में मनुष्य परेशान हैं। अवसाद, तनाव, चिड़चिड़ापन, असन्तोष और अशांति (Depression, Tension, Frustration) में जी रहे हैं, बेचैन हैं। सोने के लिए नींद की दवा और भोजन पचाने के लिए भी दवाइयों की भरमार है।

इसके निवारण के लिए मनुष्य को योग के बहिरंग साधनों आसन, प्राणायाम क्रियाओं के साथ–साथ ध्यान का भी अभ्यास करना चाहिए। तथा यम–नियम का भी पालन जरूरी है। जियो और जीने दो (Live and let live) का सिद्धान्त सामने रखने पर व्यक्ति को शान्ति मिल सकती है। व्यक्ति को अपनी सोच सकारात्मक (Positive) और रचनात्मक (Constructive) रखने पर ध्यान देना चाहिए। अच्छी सोच के परिणाम भी अच्छे मिलते हैं। अब तो लोगों का यह विश्वास भी दृढ़ होने लगा है कि सकारात्मक सोच के साथ नियमित ध्यान करने से अती इन्द्रीय क्षमताओं का विकास हो सकता है।

आज सारा विश्व योग की ओर अग्रसर है। हर देश में योग की कक्षाएँ संचालित हो रही हैं। विश्व स्तर पर यह समझा गया है कि शारीरिक और मानसिक दोनों स्वास्थ्य के लिए योग की महत्वपूर्ण भूमिका है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सर्व सम्मति से यह निर्णय लिया कि 21 जून को पूरे विश्व में विश्व योग दिवस मनाया जायेगा। विश्व के सभी देशों में योग दिवस मनाने के साथ नियमित रूप से योग सिखाने और सीखने के प्रति दुनिया भर के लोगों में भारी उत्साह है और योग करने से सुदृढ़ परिणामों का अनुभव कर रहे हैं।

अवश्य ही विश्व में परिवर्तन आयेगा और योग विद्या का प्रकाश सभी को मिल सकेगा। योग का डंका पूरे विश्व में बज रहा है। यहां यह चर्चा करना प्रासंगिक है कि मैं गुरुदेव की आज्ञा से 1973 से ऋषिकेश आश्रम में सेवा में रहा। ऋषिकेश में उत्सव के प्रारम्भ में नगर कीर्तन/ प्रभात फेरी की परम्परा है। स्वयं गुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज प्रभात फेरी में भाग लेते उस समय यह गीत भी सुनाया जाता था "उठो सोने वालो उठाने वाले आ गये, योग का डंका बजाने वाले आ गये।" और आज हम स्वयं देख रहे हैं कि उनकी संकल्प शक्ति का परिणाम सामने है दुनिया भर में योग का डंका बज रहा है। अतः सद्गुरु की आज्ञा का ध्यान रखें कि योग ही दिव्य और अविनाशी जीवन है। योग जीवन जीने की कला और विज्ञान है। अपने जीवन में योग अवश्य ही अपनाना चाहिए।

''ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः''

श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्चा

—डॉ. विजय सिंह

नवम स्कन्ध के तीसरे अध्याय में महर्षि च्यवन एवं राजा शर्याति के वंश का विवरण किया गया है। वक्ता श्रीशुकदेव जी एवं श्रोता महाराज परीक्षित एवं ऋषि जन मण्डल।

मनु पुत्र राजा शर्याति वेदों के मर्मज्ञ ज्ञाता थे। अंगीरा गोत्र के ऋषियों को दूसरे दिन का कर्म बतलाया था। शर्याति की पुत्री का नाम सुकन्या था। वन विहार करते हुए एक दिन राजा अपनी पुत्री के साथ च्यवन ऋषि के आश्रम में पहुँच गये। सुकन्या वन में घूमते हुए दीमक की बांबी में दो दिप्तमान ज्योति देखा। कौतुहल वश उसने काँटे से उन ज्योतियों को बेध दिया। परिणामस्वरूप खून बहने लगा और इधर राजा शर्याति के सैनिकों का मल-मूत्र रुक गया।

राजा ने सैनिकों से कहा—तुम लोगों ने महर्षि च्यवन के प्रति कोई अनुचित व्यवहार तो नहीं किया? तब सुकन्या ने डरते-डरते सब बात पिता को सत्य-सत्य बताया। राजा शर्याति घबरा गये। बड़ी विनम्रता पूर्वक स्तुति करके च्यवन मुनि को प्रसन्न किया। नेत्रहीन च्यवन ऋषि के मन्तव्य को जानकर उन्होंने अपनी कन्या सुकन्या को उन्हें समर्पित करके उनसे आज्ञा लेकर अपनी राजधानी लौटे।

इधर उग्र ऋषि च्यवन की सुकन्या ने बड़ी सावधानी से सेवा द्वारा प्रसन्न करने लगी। कुछ काल बाद आश्रम पर अश्विनी कुमार आये। ऋषि ने उनका सत्कार किया और कहा कि 'आप दोनों समर्थ हैं मुख पूर्ण आरोग्य एवं युवा-अवस्था प्रदान कीजिए। मैं बदले में आपको यज्ञ में सोमरस का भाग दूँगा। अश्विनी कुमारों ने ठीक है कहकर ऋषि का अभिनन्दन किया और कहा 'यह सिद्धों द्वारा बनाया हुआ कुण्ड है, आप इसमें स्नान कीजिए—

वाढ़मित्यूचतुर्विप्रमभिनन्द्य मिषक्तमौ।
निमज्जतां भवानस्मिन् ह्रदे सिद्ध विनिर्मिते।। 13।।

(अ. 3 स्क. 9)

(श्री सिद्ध गुफा सवांई में निवास करते हुए सिद्धों के सिरताज महाप्रभु श्री रामलाल जी ने भी एक कुण्ड जन हिताय बनवाया था और उसमें वरदान स्वरूप स्नान करने वालों का चर्म रोग भयंकर से भयंकर नहाते ही समाप्त हो जाता था) उसी याद में ''अमृतकुण्ड'' नामक एक मनोरम तालाब का निर्माण श्री गुरुदेव भगवान चन्द्रमोहन जी महाराज की प्रेरणा से योगनी श्री उमादेवी ने वर्तमान में बनवाया है।)

इधर दोनों अश्विनी कुमारों के साथ महर्षि च्यवन कुण्ड में डुबकी लगाकर निकले तो तीनों पुरुष एक से मालूम पड़ते थे। सुकन्या ने अपने पति को न पहचानकर अश्विनी कुमारों की शरण ली। उसके पतिव्रत से प्रसन्न हो उसे उसके पति को बतला दिया। वे स्वर्ग को चले गये।

अब सूर्य के समान तेजस्वी युवावस्था प्राप्त च्यवन ऋषि सुकन्या के साथ आश्रम में निवास करते हुए, तप–योग में रत गृहस्थी जीवन की मर्यादाओं का निर्वाह करने लगे। कुछ समय बाद राजा शर्याति यज्ञ करने की इच्छा लेकर च्यवन मुनि के आश्रम पर आये। अपनी कन्या को युवक के साथ बैठा देख उन्हें अत्यन्त कष्ट हुआ। उन्होंने सुकन्या की बड़ी भारी भर्तस्ना किया। यहाँ तक कह दिया कि तू निर्लज्ज होकर पराये पुरुष की सेवा कर रही है इस प्रकार पिता एवं पति के वंश को नरक में ले जा रही है।

अव्यथित सुकन्या मंद हास करती हुई बोली–पिताजी! ये स्वयं महर्षि च्यवन ही हैं। महर्षि च्यवन के यौवन और सौन्दर्य की प्राप्ति का सारा वृतान्त कह सुनाया।

महर्षि च्यवन ने शर्याति से सोमयज्ञ कराया और अपने प्रभाव से अश्विनी कुमारों को सोमपान कराया। इन्द्र यह देख भड़क उठे। शर्याति को मारने के लिये वज्र उठाया। महर्षि च्यवन ने वज्र के साथ उनके हाथ को अपने योग–बल से स्तम्भित कर दिया। जब सब देवताओं ने अश्विनी कुमारों को सोम भाग देना स्वीकार कर लिया तब इन्द्र स्वस्थ हो गये।

शर्याति के वंश में रेवत हुए हैं। रेवत ने समुद्र के भीतर कुशस्थली नाम की एक नगरी बसायी थी। (आधुनिक काल में शिंगापुर और योरोपीय देशों में ऐसा शहर सम्भव हो गया है)। उनके बड़े पुत्र ककुद्मी बड़े योगी हुए हैं। वे अपनी पुत्री रेवती को लेकर ब्रह्मा जी के लोक में गये। कुछ काल के पश्चात् उन्होंने ब्रह्माजी से अपना मन्तव्य कहा कि रेवती के लिए वर पृथ्वी पर कौन होगा? यही जानने हेतु सर्वज्ञ मैं आपके पास आया हूँ। उनकी बात सुनकर ब्रह्माजी हँसते हुए बोले–तुमने मन में जिन लोगों के विषय में सोच रखा था, वे सब काल कलवित हो चुके हैं। उनके गोत्रों के नाम भी अब सुनाई नहीं पड़ते। तुम्हारे यहाँ रहते सत्ताईस चतुर्युगी का समय बीत चुका है। अब तुम शीघ्र पृथ्वी पर जाओ भगवान कृष्ण का अवतार पृथ्वी का भार उतारने हेतु हो चुका है। उनके बड़े भाई बलराम जी को अपनी कन्या सौंप दो और स्वयं तुम बद्रिकाश्रम जाकर नर–नारायण के सानिध्य में तप करो! शुकदेव जी कहते हैं–परीक्षित्! मनुपुत्र नभग का पुत्र नाभाग था। वह दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य का पालन करके जब घर लौटा तो देखा बड़े भाइयों ने सारी सम्पत्ति हड़प ली है और उसके हिस्से में पिता को दिया है। पिता एवं महादेव जी की कृपा से नाभाग यज्ञ सम्पत्ति प्राप्त किये तथा ब्रह्मतत्व का ज्ञान भी प्राप्त किया।

इन्हीं महाभाग नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुए हैं। जिनकी अहैतुकी भक्ति एवं निष्ठा से प्रसन्न हो भगवान अपने पार्षद सुदर्शन चक्र को इनके रक्षार्थ प्रयोजित किये हुए थे। एक समय रुद्रावतार भगवान दुर्वाशा जी तप से निवृत्त होकर भोजन हेतु अम्बरीष के पास आये। राजा ने बड़ा सत्कार करते हुए उन्हें भोजन के लिए आमंत्रित किया। श्री दुर्वाशा जी स्नान हेतु नदी पर गये और काफी समय बाद स्नान ध्यान कर लौटे। इधर एकादशी व्रत सम्पन्न कर द्वादशी के विशेष मुहूर्त में राजा को पारण करना था। वह समय बीता जा रहा था। उधर आमंत्रित श्री दुर्वासा जी अभी पधारे नहीं, यह देख धर्मसंकट में पड़े राजा ने पुरोहितों के परामर्श से मात्र जल पीकर पारण कर लिया। इधर पारण किये उधर श्री दुर्वासा जी आ गये। राजा के इस कृत्य से अत्यन्त क्रुद्ध हो उन्हें मारने हेतु अपने जटा के एक लट से भयानक कृत्या को प्रकट कर आदेश दिये कि इस अशिष्ट राजा को जला दो। कृत्या ज्यों राजा की ओर झपटी, सर्वअन्तर्यामी सुदर्शन ने उसे मारकर भस्म कर दिया और उग्र तेज से दुर्वासा जी को जलाने हेतु उनकी ओर झपटे। श्री दुर्वासा जी सुदर्शन के तेज से पीड़ित हो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में भागते फिरे, ब्रह्माजी के शरण में गये उन्होंने कहा मैं कुछ नहीं कर सकता, वे शिव जी के पास गये उन्होंने सुझाव दिया तुम्हें भगवान विष्णु के शरण में जाना चाहिए राजा अम्बरीष उनका बड़ा भक्त है। दुर्वासा जी नारायण के पास गये उन्होंने अपने को भक्तों के पास में बँधा बताया और कहा जिसके अपराध के कारण आप त्रषित हैं उसके पास ही जाइये। दुर्वासा जी निःसंदेह तपस्या और विद्या परम कल्याण के साधन हैं। परन्तु यदि साधक उदण्ड और अन्यायी हो जाए, तो वे ही दोनों उलटा फल देने लगते हैं–

तपो विद्या च विप्राणां निः श्रेयसकरे उभे।
ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा।।70।।

(चतुर्थ अ. स्कं. 9)

भगवान ने कहा–दुर्वासा जी! आपका कल्याण हो। आप राजा अम्बरीष के पास जाइये और उनसे क्षमा माँगिये। तब आपको शान्ति मिलेगी–

ब्रह्मंस्तद् गच्छ भद्रं ते नाभाग तनयं नृपम्।
क्षमापय महाभागं ततः शान्तिर्भविष्यति।।71।।

(अ. 4 स्कं. 9)

गीता तथा पातंजल योग सूत्रों में

एकात्मकता

– श्री द्वारिका प्रसाद शर्मा

भारतीय संस्कृति के उच्चतम आदर्शों को यदि कोई व्यक्ति एकत्र देखने तथा अध्ययन करने की आकांक्षा करना चाहे तो उसे योग योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के मुखारबिन्दु से निस्सृत गीता का मनोयोग से अध्ययन करना अभीष्ट होगा। गीता भारतीय संस्कृति की आत्मा है तथा एक ऐसा अमूल्य ग्रन्थरत्न है जिसकी समता का ग्रन्थरत्न न है, न कभी रहा और न ही कभी आगे बन सकेगा। इसमें निहित है ब्रह्मविद्या; इसमें भरा है उपनिषदों का सार। इसमें श्रोता हैं महाधनुर्धर अर्जुन तथा वक्ता हैं श्रीकृष्ण–नर एवं नारायण स्वयं इस अत्यन्त अद्भुत एवं परमपावन संवाद के संदेशवाहक बने हुए हैं। आत्मोत्कर्ष एवं आत्मिक अभ्युदय का यह शाश्वत गीत इस सप्तशत श्लोकी (700 श्लोकों में) गीता में न जाने अब तक कितने ही असंख्य मानवों के परम–कल्याण का कारक बन चुका है तथा **'यावत चन्द्र दिवाकरौ'** की कालावधि तक मानवमात्र की अन्तः प्रसुप्त चेतना को जागृत कर उनमें नव–नवीन उद्भावनाओं की कल्याणमयी सृष्टि करता हुआ सार्वजनीय श्रेयस्करी प्रवृत्तियों का जनक बना रहेगा, इसमें किंचितमात्र सन्देह नहीं है। संक्षेप में इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि श्रीमद्भगवद गीता एक ऐसी अमूल्य धरोहर है जो सर्वदा पठनीय, मननीय तथा अभ्यसनीय है। यह महामुनि व्यास द्वारा रचित तथा भगवन्मुखारविन्द द्वारा निस्सृत एक अपूर्व ग्रन्थ–रत्न के रूप में मानव मात्र के जीवन में एक आलोक–स्तम्भ बन पद–पद पर सहायक सिद्ध होता है।

इसी प्रकार प्रसिद्ध योग–सूत्रों के प्रणेता भगवान पतंजलि ने भी स्वानुभव सिद्ध सत्यों का उद्घाटन कर मानवमात्र के कल्याण–पथ को प्रशस्ततर बनाने में अभूतपूर्व योगदान किया है। हमारे पूर्वज ऋषि व मुनि मन्त्र–द्रष्टा तथा सत्य–द्रष्टा रहे हैं। उनके द्वारा उच्चरित वाक् ही मन्त्र बनकर तथा त्रिकाल में सत्य होकर अवतरित हुई है। ऐसी पावन वाणी क्यों न जगतीतल में मानव मात्र के निमित्त श्रेयस्करी तथा यशस्करी हो। भगवान पतंजलिदेव ने चार पादों में ''समाधिपाद, विभूति पाद, साधन पाद तथा कैवल्य पाद'' के चार मणियों में प्रत्येक पाद की विभिन्न संख्याओं में रचित सूत्र–रत्नों के साथ एक मुक्ताहार जो विश्व के जन–जन हेतु समर्पित किया है। वह वस्तुतः सर्वथा अभिनन्दनीय, वन्दनीय तथा समभ्यसनीय एवं अनुकरणीय है। भगवान पतंजलिदेव के सूत्रों पर महामुनि व्यासकृत ''भाष्य'' ही पातंजलि योग–दर्शन की

सर्वातिशायी उत्कृष्ट महत्ता का परिचायक है।

इस लेख का प्रतिपाद्य विषय है कि श्रीमद्भगवद् गीता में यत्र–तत्र जिस विषय को संग्राह्य किया गया है उसका समावेश पातंजल योग–दर्शन में सूत्रों में कहीं न कहीं दृष्टिगोचर हुआ है। गीता तथा पातंजल योग–दर्शन वास्तव में जीवन–दर्शन के प्रस्थापक दो अनमोल रत्न हैं, जिनसे जीवन को रत्नसम उत्कृष्ट एवं उज्जवल बना पाने की कला यत्र–तत्र–सर्वत्र बिखरी हुई है। मात्र आवश्यकता है बस उस संग्राहक की, उस बटोरने वाले की जो उन्हें ग्रहण कर हृदयंगम करे तथा उन आदर्शों का आलिंगन कर अपने इस दुर्लभ नर–तनु को दिव्य सम्पदाओं से युक्त बनाकर जीवन के चरम लक्ष्य आत्म साक्षात्कार सहित उस परमात्म सत्ता में अपनी आत्म–सत्ता को विलीन कर तद्रूपता प्राप्त कर ले।

गीता तथा पातंजल योग–दर्शन दोनों ही ग्रन्थों के प्रतिपाद्य मुख्य विषय हैं–भगवद्–प्राप्ति अथवा कैवल्य भाव प्राप्ति, आत्म–प्राप्ति भी जिसे हम कह सकते हैं। गीता में 18 अध्याय हैं। प्रमुख रूप से प्रथम के छः अध्यायों में कर्मयोग का निरूपण किया गया है। दूसरे छः अध्यायों में भक्तियोग का विशद वर्णन है तथा तीसरे छः अध्यायों में ज्ञानयोग का व्याख्यापन हुआ है। संक्षेपतः हम यों कह सकते हैं कि भगवद्–प्राप्ति के तीन प्रकार के साधन–सोपान गीता में उपदिष्ट हैं–पहला कर्मयोग, दूसरा भक्तियोग और तीसरा ज्ञानयोग। इसी प्रकार महामुनि पतंजलि कृत चार पाद कैवल्य प्राप्ति अथवा आत्म साक्षात्कार हेतु विभिन्न साधन सोपान हैं, जिनसे मनुष्य क्रमशः जीवन–मार्ग को प्रशस्त करता हुआ अन्तिम एवं प्राप्तव्य लक्ष्य कैवल्य पद को प्राप्त कर लिया करता है।

पातंजल योग–दर्शन के आरम्भ में ही योग की व्याख्या करते हुए भगवान पतंजलिदेव ने एक सूत्र की रचना की "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" अर्थात् चित्त की वृत्तियों को सम्पूर्ण रूप से रोक देना ही "योग" है। देखने में समझने में तथा पढ़ लेने में यह सूत्र कितना छोटा तथा निरापद सा जान पड़ता है, परन्तु जितना यह छोटा है, इसके सम्यक् अनुशीलन तथा आचरण के लिए यह सम्पूर्ण जीवन भी बहुत ही छोटा दीख पड़ता है। कहने का अभिप्राय यह है कि चित्तवृत्तियों का उदय क्षण–प्रतिक्षण अविराम गति से हुआ करता है। उस वृत्ति–चक्र की उपरामता शनैः–शनैः ही सम्भव है। उपरामता के क्रम में भी इन्द्रियों का उनके विषयों से प्रत्याहरण, यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि। इन योग के अष्टांगों का सम्यक् रूपेण आचरण, श्रद्धापूर्वक, सुदीर्घ अवधि तक निरंतर अबाध रूप से अभ्यास ही नितान्त वांछनीय एवं अतिप्रेत है। पातंजल योग–सूत्र "स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़–भूमिः" के अनुसार अक्षरशः अनुभूत एक सिद्ध सत्य है।

उपर्युक्त सिद्धान्त की परिपुष्टि योग–योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण अपने मुखारबिन्द से मन

की एकाग्रता पर बल देते हुए मानस चांचल्य को वशीभूत करने की शिक्षा, अभ्यास तथा वैराग्य के समाश्रय से पूर्ण करने के लिए अर्जुन के तत्सम्बन्धी प्रश्न के माध्यम से प्रदान कर रहे हैं। वे कहते हैं–

चंचलं हि मनः कृष्ण, प्रमाथि बलवद्दृढ़म्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये, वायोरिव सुदुष्करम्।।
असंशयं महाबाहो, मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते।।
असंयतात्मना योगो, दुष्प्राप्यं इति मे मतिः।।
वश्यात्मना तु यतता, शक्योऽवाप्तुमुपायतः।।

–गीता 6/34–35–36

भगवन्मुखारविन्द के उपर्युक्त वचनामृत कितने यथार्थ एवं हृदय स्पर्शी हैं। इनकी सत्यता में लेशमात्र भी सन्देह अथवा संशय नहीं है। जीवन के पग–पग पर मनुष्यमात्र इन यथार्थ सत्यों का अनुभव करता रहता है तथापि अभ्यास तथा वैराग्य की बलवती धारणा से इस दुर्निग्रही मन पर भी इन्द्रियजय आदि के माध्यमों से अथवा अन्यान्य प्राणायामादिक साधनों के अवलम्ब से–उपायों द्वारा विजय प्राप्त कर लिया करता है।

पातंजल योग–दर्शनकार ने भी इन्हीं विषयों के प्रतिपादनार्थ निम्न सूत्रों की संरचना कर दी–

श्रद्धापूर्वक मितरेषाम्
तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः
अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः

वस्तुतः देखा जाए तो हमारा 'संकल्प–विकल्प वृत्तिमान' यह मन ही तो हमें सत्पथगामी या कुपथगामी या दूसरे शब्दों में शुभ संकल्पवान् या अशुभ संकल्पी बनाया करता है। इसको हम जिस ओर उन्मुख कर दें वह उसी प्रवृत्ति को धारणा करने वाला हो जाया करता है। वेद भगवान में भी मन की ऐसी वृत्तिमत्ता को स्वीकार करते हुए 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' की ऋचाओं की उद्घोषणायें ऋषिप्रवरों द्वारा की गई हैं। सारा खेल है भी इसी नटवर नागर चंचल राजा मन का ही। लोकोक्तियाँ कितनी सटीक तथा यथार्थ हैं इन्हीं मन के बारे में–

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

जितं जगत्तेन मनो हिं येव–

परन्तु जैसा कि इससे पूर्व भी उल्लेख किया जा चुका है कि ये सूक्तियाँ पढ़ने–लिखने समझने में जितनी सुगम व सरल प्रतीत होती हैं इनका आचरण करने वाला स्वनामधन्य कोई

एक विरला ही मनुज श्रेष्ठ इस धरतीतल पर ढूँढ़े से भी मिल पाना कठिन हुआ करता है क्योंकि यह 'असिधाराव्रत' के सदृश कठिन परीक्षा के दौर से तप्तकाञ्चन सरीखे उत्तम व्यक्तित्व ही हुआ करते हैं।

इसके अतिरिक्त गीता में अखिलात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने 'भक्तियोग' के माध्यम से निम्न श्लोक द्वारा क्या ही सुगम, सरल व सुन्दर मार्ग इन्गित किया है–

यत्करोषि यदक्षसि, यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय, तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।
शुभाशुभ फलैरेवं, मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यास योग युक्तात्मा, विमुक्तो मामुपैष्यसि।।

पातंजल योग सूत्रकार ने भी इसी सिद्धान्त का निरूपण निम्न सूत्रों के माध्यम से कर दिया है–

ईश्वर प्रणिधानाद् वा
यथाभिमतध्यानाद् वा
वीतरागविषयं वा चितम्
आदि।

इससे स्पष्ट है कि भक्ति से ओतप्रोत मन भक्तियोग द्वारा अपने अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त कर लिया करता है। आवश्यकता है बस केवल इतनी कि वह मन को इस बात के लिए राजी कर ले कि वह किस माध्यम को अपनाकर दृढ़तापूर्वक अपने गन्तव्य पथ पर पहुंचना चाहेगा। एक बार अपनाये गये मार्ग से फिर विचलित होना या संशयालु होना यह पतन के कारण हुआ करते हैं। पतंजलि देव के, अनुसार **'संशयस्थान .... विक्षेपाः सहभुवः'** संशय आदि वृत्तियों के लिये फिर उसमें स्थान नहीं है। श्रद्धातिरेक द्वारा ही वह सहज सम्भाव्य, है।

सा श्रद्धा जननीव योगिनं पाति।

इसके अनुसार श्रद्धा एवं विश्वास से प्राप्तव्य एवं गन्तव्य पथ का अनुसरण तथावत तथा तदनुसार ही होना चाहिए। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी संशयात्मत व्यक्तियों को सचेत करते हुए निम्न श्लोक में अपने वचनामृत की अवतारणा की है–

अज्ञाश्चाश्रद्दधानश्च, संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो, न सुखं संशयात्मनः।।
श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं, तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां, शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।

–गीता 4/40–39

पातंजल योगदर्शनकार ने 'निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः' इस सूत्र की रचना कर भगवद्गीता के उस श्लोक का स्मरण दिला दिया है जिसे पाकर सब सुखों की निवृत्ति हो जाया करती है।

प्रसादे सर्वदुःखानां, हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु, बुद्धिः पर्यवतिष्टते।।

—गीता 2/65

तथा

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा, अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैः, गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।।

—गीता 15/5

इसके अतिरिक्त 'ज्ञान योग' के माध्यम से भगवान् श्रीकृष्ण ने निम्न उपदेशामृत देकर हमें सचेत किया है।

मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां नमस्कुरु।

—गीता 9/34

नाहं प्रकाशः सर्वस्य, योगमायासमावृतः।
मूढ़ोऽयं नाभिजानाति, लोको मामजमव्यम्।।

—गीता 7/25

ये यथा मां प्रपद्यन्ते, तांस्तथैव भजाम्यहम्।

—गीता 4/11

अन्ततः भगवान् श्रीकृष्ण के ये वचनामृत भी कितने यथार्थ एवं ग्राह्य हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी, मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते, मायामेतां तरन्ति ते।।

—गीता 7/14

भगवान श्रीकृष्ण की उक्त उक्ति मानव मात्र के लिए सर्वत्र ग्राह्य एवं अवबोध्य है। इस लघु जीवन में विविध प्रकार के सांसारिक क्रियाकलापों में प्रति क्षण व्यस्त इस जीवन क्रम में मनुष्य को यह अवसर ही कहाँ कि वह स्वयं चेष्टावान् तथा आस्थावान् रहकर इस कठिन एवं दुस्साध्य मायामय संसार–सागर से अपने आपको उबार कर ले जाए। गुरुदेव के रूप में साक्षात् ईश्वर एवं सर्वसमर्थ प्रभु की चरण–शरण के द्वारा ही यह सुदुष्कर पथ भी सुकर एवं सुलभ हो जाया करता है। आवश्यकता है तो मात्र इतनी कि श्रद्धातिशय द्वारा हम गुरुदेव की अनुकम्पा के पात्र बनें तथा इस जीवन के परम लाभ को उनके सानिध्य की सन्निधि अवश्यमेव प्राप्त करें।

शक्तिपात एवं कुण्डलिनी जागरण

—ब्र. सूरज प्रकाश

मानव जीवन का उद्देश्य ''आत्म–साक्षात्कार'' या ईश्वर प्राप्ति है। मनुष्य इस अमूल्य वस्तु को प्रायः भूल गया है, सहज मानवता को भी छोड़ता जा रहा है। आज का मानव मानो वह अकेला ही सुख भोगता हुआ जीवित रहेगा। इसी कुविचार के परिणाम से आज जगत में चारों ओर संघर्ष, द्वेष, वैर, हिंसा, विध्वंस, विनाश, उग्रवाद इत्यादि घोर अन्याय की उधेड़–बुन में व्यस्त एवं दुःखी है, सभी कुपथ पर चल रहे हैं। यदि कोई परमार्थ में होने का दम्भ करते हैं तो वे भी तामसी उपासनाओं, सिद्धियों में अन्धे होकर पतन के मार्ग पर चल रहे हैं।

इस दशा स्थिति में कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं, जो मानव जीवन की वास्तविक सफलता के लिए इच्छा रखते हैं।

सही अर्थों में वास्तविक जीवन दर्शनों पर आधारित है। दर्शनों में भी 'योग–दर्शन' का व्यक्ताव्यक्त रूप से विशेष सहयोग है। योग विषय इतना अधिक है कि उसका एकांश भी कई ग्रन्थों में प्रकाशित नहीं किया जा सकता तथापि श्री सद्गुरुदेवजी की कृपानुकम्पा एवं आज्ञा से योग के इस परमोपयोगी अतिगूढ़ रहस्य पर प्रत्यक्षतः संकेत रूप में प्रकाश डालने की बाल चेष्टा करूँगा। जो योगी इस साधना को सम्पन्न कर लेता है, उसके लिए जीवन में अन्य साधना बाकी नहीं रहतीं।

इसकी साधन क्रियायें थोड़ी कठिन अवश्य हैं, पर असम्भव नहीं। पुस्तकों के माध्यम से यह कला नहीं सीखी जा सकती, इसके लिए तो योग्य गुरु के चरणों में बैठना होगा। यह साधना अपने अन्दर षट्चक्रों को जागृत करने से सम्बन्ध रखती है।

गुरु–चरणों में बैठकर उनसे धारणा, ध्यान और समाधि की स्थिति सीखनी होगी। हमारे शरीर में कौन–कौन से चक्र कहाँ–कहाँ पर स्थित हैं? किस प्रकार इन चक्रों–मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र के बारे में श्री गुरु–मुख से जानकारी प्राप्त करें। श्री गुरुमुख से प्राप्त विद्या की उपासना से ही सिद्धि का अधिकारी बनाया जा सकता है, क्योंकि शिवजी का वचन है–

पुस्तके लिखिता विद्या, नैव सिद्धिप्रदा नृणाम्।
गुरुं विनापि शास्त्रेऽस्मिन्नाधिकारः कथंचन।।

अर्थात् पुस्तक में लिखी विद्या मनुष्यों को सिद्धि नहीं देती। शास्त्रों में बिना गुरु के उपदेश के किसी प्रकार के कार्य का अधिकार नहीं है।

अतः जब उपासना की इच्छा जागृत हो, तब श्री सद्गुरु से विधिवत् योग–दीक्षा लेकर साधना करनी चाहिए। इस कार्य में मुख्य श्रद्धा और भावना है। श्री गुरुदेवजी के चरणों में विशेष श्रद्धा होनी चाहिए, क्योंकि वचन है–

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे, दैवेसे भैषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी।।

अर्थात् मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, औषधि तथा गुरुदेव में जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है।

इस प्रकार ज्ञान प्राप्त कर अपने प्रयत्नों से ही उन चक्रों को जागृत करें। इस प्रकार कुण्डलिनी जागृत कर जीवन के अनेक संतापों से मुक्ति पाकर आनन्द में जीवन व्यतीत करें।

इस समय बहुत ही कम संख्या में ऐसे योग्य योगी महापुरुष एवं सन्त होंगे, जिनकी कुण्डलिनी जागृत हो और जिनकी इतनी हिम्मत हो कि वे अपने शिष्य या साधक की कुण्डलिनी जागृत कर सकें।

पूर्ण शक्ति का मूल आधार चेतना केन्द्र–नाभि है और नाभि के अन्दर की ओर मूला–धार चक्र है। गुरुदेवजी की निगरानी में विशेष तरीके से शोधन क्रियाएँ नेति–धौति बस्ति आदि के साथ–साथ प्राणायाम कर मूलाधार चक्र जागृत कर साधक नये जीवन का अनुभव करता है। अद्भुत चमत्कार आनंद का अनुभव होने लगता है। इस प्रकार कुछ और विशेष क्रियाओं द्वारा आगे अन्य स्वाधिष्ठान आदि चक्रों को जागृत करता हुआ शिष्य सहसार की ओर बढ़ता है। इसी सिद्ध क्रिया को कुण्डलिनी जागरण कहते हैं।

गुरु साहचर्य एवं शक्तिपात–

संसार की अन्य साधनाएँ तो गुरु–मुख से शास्त्र पढ़कर अपने–अपने स्थान पर सम्पन्न की जा सकती हैं, परन्तु कुण्डलिनी जागरण साधना तो गुरुदेव के चरणों में बैठकर सीखने से ही प्राप्त होती है।

गुरुदेव अपनी दिव्य शक्ति का संचार कर चक्रों में क्रिया उत्पन्न कर शिष्य को सिद्ध बनाते हैं। सभी सिद्धयोगियों ने इन क्रियाओं को बड़ी सावधानी एवं कठिनाई से सीखा है। सही गुरु का मिलना अत्यधिक कठिन है और गुरु मिल भी जाएँ तो भी उनसे यह परम ज्ञान प्राप्त करना और भी कठिन है। इसलिए शक्ति जागरण की साधना योगी की सर्वश्रेष्ठ साधना कही गई है।

शास्त्रों में मानव–जीवन का महत्व सर्वोपरि कहा गया है–

दुर्लभो हि मानुष्यं जन्म।

यदि जीवन पाकर भी मनुष्य पूर्णत्व को प्राप्त नहीं करता तो उसका जीवन व्यर्थ ही चला जाता है। बहुत ही भाग्यशाली बिरले व्यक्ति इस जीवन की सार्थकता प्राप्त करने में सफल हो पाते हैं।

योग–मार्ग का प्रत्येक साधक यह जानता है कि शक्तिपात जीवन की श्रेष्ठतम उप–लब्धि है। जिस साधक के भाग्य उदय होते हैं, उस पर विशेष कृपा होती है और उसे सिद्ध गुरु के द्वारा शक्तिपात सहज ही प्राप्त हो जाता है।

शक्तिपात क्या है?

जो शिष्य श्री गुरुदेवजी की सेवा व साधना में निरन्तर सफलता पाना चाहता है तथा जिसने कुछ अनुष्ठान भी किये हों, तब गुरुदेवजी प्रसन्न होकर अत्यधिक कृपानुकम्पा करते हुए अपने शरीर स्थित तपोबल से कुछ विशेष शक्ति उस शिष्य को प्रदान कर देते हैं। जिससे वह साधक अपनी योग–साधना के क्षेत्र में पूर्ण सफलता तथा अनेक योग की सिद्धियाँ प्राप्त करने में सक्षम हो जाता है। इस प्रकार की शक्ति के रूपान्तरण की क्रिया को शक्तिपात कहते हैं। यह क्रिया इतनी सहज नहीं है, जितनी कि यहाँ लिखी या पढ़ी जा रही है।

श्री गुरुदेव अपने शिष्य को सामने बिठाकर अपने दिव्य शरीर द्वारा शक्ति को केन्द्रीभूत कर, नेत्रों के माध्यम से, कर–कमलों के स्पर्श से अथवा शिष्य को अपने हृदय से लगाकर शिष्य के शरीर में उस विशेष साधनात्मक शक्ति को रूपान्तरित कर देते हैं। ज्यों ही यह शक्तिपात होता है, त्यों ही साधक को आनन्दयुक्त अद्‌भुत अनिर्वचनीय अनुभव तुरन्त होने लगते हैं।

थोड़े ही समय के अन्तराल में योग–साधक ब्रह्मत्व सिद्धि एवं सभी साधनाओं में पूर्णता और सिद्धता हस्तगत कर लेता है। इस प्रकार ऐसा योगी–योगियों में सर्वश्रेष्ठ एक पूर्ण सिद्ध बन जाता है। आगामी निबन्धों में क्रमशः शक्ति–जागरण क्रम क्या? हठयोग की प्रक्रियाओं में कुण्डलिनी–जागरण सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। आयुर्वेद और ज्योतिष प्रक्रियाओं का शक्ति–जागरण में सहयोग कैसे इत्यादि विषयों पर प्रकाश डाला जायेगा।

अज्ञान नाशक–गुरुज्ञान

– श्री कमरुद्दीन कछवा, मीरजापुर

मानव सब कुछ प्राप्त करके भी कहता है कि उसे कुछ और चाहिए। सब कुछ पा लेने पर भी कुछ पाने की इच्छा उसमें शेष रहती है। इससे मालूम होता है कि सब कुछ से परे कुछ और भी है। परवाना जब तक अपनी मंजिले–मकसूद नहीं पहुँच जाता है, तब तक उसे चैन या शान्ति नहीं आती। अपनी शान्ति प्राप्त करने के लिए अपनी नन्दी देह की दीवार की भी वह रुकावट समझकर मिटाने के लिए बाध्य हो जाता है। दीपक को जलता हुआ देखते ही उसके अन्दर एक शमा जो जल उठी है, वही उसको अपनी ओर खींचकर लाती है। वह शमा जब तक उसको जला नहीं देगी, वह गुरु से प्राप्त हुई आत्मज्योति की झलक, जब तक शिष्य की मलिन देहाकृति को खत्म नहीं कर देगी, तब तक परवाना रूपी शिष्य को शाश्वत शान्ति प्राप्त नहीं होगी। यह एक अजीब नाता है जो उसने पैदा कर लिया है।

जब हमारे पिता–पितामह का जन्म भी नहीं हुआ था, संसार में स्वर्ण तब भी इसी तरह ही था और आज भी स्वर्ण में लेशमात्र भी कमी नहीं है। यदि दस लाख रुपये के आभूषण बनकर टूट जाएँ, तब भी उसमें कुछ अन्तर नहीं आयेगा। दस हजार आदमी काल–कलवित हो जाएँ तो भी स्वर्ण में तनिक भी कमी या हानि नहीं होगी। ये सांसारिक पदार्थ ज्यों के त्यों बने रहेंगे, इनसे ताल्लुक (सम्बन्ध) पैदा करके हम मनुष्य ही दुःखी–सुखी होते हैं।

यह ताल्लुक का एक हजाब (पर्दा) सा होता है। मानव चाहे इन चीजों के लिए खुद–कशी (आत्म–हत्या) भी कर ले, लेकिन इन पदार्थों को तो कुछ मालूम नहीं। चाहे मनुष्य संसार छोड़कर चला जावे, लेकिन यह माया तो पीछे नहीं चलेगी। यह तो अपनी स्वाभाविकता में मजबूर है। माया जब चाहे मानव का साथ छोड़ सकती है, क्योंकि हमारे हाथ माया के हाथ में हैं, माया हमारे हाथों में नहीं।

इस परिस्थिति में ईश्वर को देखो! अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए परवाने को उसके हृदय में डाली हुई शमा उसे बाहर की जली हुई शमा की ओर खींचकर ले जा रही है। परवाना अपनी देह को अपने प्रियतम के मिलन में रुकावट समझकर ठोकरें मार–मार कर समाप्त कर रहा है। एक ही बात हम अपने बुजुर्गों से सुनते आ रहे हैं कि जीवन एक ललकार है, जिसका मुकाबला अवश्य करना है। इसके लिए बुजुर्गों ने यम–नियम रखे हैं।

त्यागने योग्य वस्तु को त्यागना संयम है। उसके बदले में नियम बनाना नियम है, जैसे कि भोजन कम खायेंगे, जिससे कि हम प्रातः तीन बजे उठ सकें। ऐसा अभ्यास करने से जीवन को निश्चित रूप से साधा जा सकता है। आनन्द का भण्डार, सरूर का खजाना मानव के अन्दर ही है, परन्तु मानव प्रमादवश तथा आलस्य के कारण भूला हुआ है। उसकी हालत ऐसी है जैसे एक राजा नशे में अपने महल के बाहर खड़ा है और उसके महल के ताले की चाबी

उसकी जेब में है और वह दरवाजा खटखटा रहा है। तमाम आराम का सामान उसके महल में पड़ा है। परन्तु वह नशे में नहीं समझता, श्रुतियारूपी द्वारपाल पुकार कर कहते हैं कि 'तू बादशाह है, तत्वमसि, तत्वमसि' तत् .... त्वम् .... असि। परन्तु वह नशे में दरवाजा खटखटाता ही चला जा रहा है।

पर बादशाह को होश में लाये कौन? चाहे वह सारी रात खड़ा रहे, दरवाजा नहीं खुलेगा। वह नशे में डूबा हुआ ठिठुरा, जब कभी नशे का एक झोंका आता है। फिर दरवाजा खटखटाता है। लेकिन शान्ति का सामान तब तक हाथ नहीं आयेगा, जब तक कि वह खुद होश में नहीं आयेगा। श्रुतियों की आवाज ध्यान से सुनो चाबी तुम्हारे पास ही है।

शांति के लिए अपनी जेब को ही टटोलना है। ऐ मानव! तुम तो अमृत के पुत्र हो शांति स्वरूप हो, तेरे लिए दुःख शब्द का प्रयोग करना ही पाप है। मृत्यु, जिससे तुम डरते हो, वह तो यमराज की धमकी है। उसके पास भी गम का कोई हजाब नहीं, अगर होता तो फिर इस जन्म में हम क्यों आते?

मौत से भी इलाजे गम न हुआ,
मौत के बाद फिर हयात आयी।

मूल से जब तक अज्ञान का नाश नहीं होता, तब तक शान्ति नहीं हो सकती। अज्ञान का नाश ज्ञान के बिना नहीं हो सकता और ज्ञान गुरु के बिना नहीं हो सकता–

जिसका गृह तिन दिया ताला, कुञ्जी गुरु सौंपाई।

चाबी तो तेरे घर और ताले की है, तुझे सिर्फ याद करना है कि वह कहाँ है? लेकिन तुम संसार के नुमाइश में इतने भूल गये हो कि मालूम नहीं कि वह चाबी कहाँ रखी है? चाबी तुमने गुरु को सौंप दी है। गुरु से आँखें मिल जाएँ तो तेरा उद्धार निश्चित है। यह जगत की आसक्ति तथा पदार्थों की चितवन जब तक गुरु–ज्ञान के प्रकाश से टूट नहीं जाती, तब तक ही दुःख ही दुःख रहेगा, क्योंकि तुम अकेले में इतनी शक्ति ही नहीं कि तुम इसे बाहर निकाल सको। संसार के तीनों प्रकार (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक) दुःखों का मूल तो अज्ञान ही है और इस अज्ञान के मल को काटने वाला एक गुरु–ज्ञान ही है। जब साधक गुरु–मन्त्र का जाप करता है और गुरु–मूर्ति एवं इष्टदेव का ध्यान करता है तो गुरु–ध्यान अपना काम करना शुरू कर देता है। जब श्रद्धेय गुरुदेव हृदय में विराजमान हो जाते हैं तो शिष्य के जन्म–मरण का बड़ा रोग कट जाता है। जिस प्राणी को गुरु तथा गुरु–मंत्र का आश्रय नहीं है, उसके लिए तो संसार में केवल दुःख ही दुःख तथा बीमारी ही बीमारी है। जिस प्रकार दवाई अपनी बीमारी की जगह ढूँढ़ लेती है। उसी प्रकार गुरु–मंत्र भी अज्ञानता के दुःख–दर्द की जगह ढूँढ़कर वहाँ हमेशा के लिए ज्ञानरूपी प्रकाश पैदा करके साधक को आनन्दित कर देता है।

मेरी विशेष अभिलाषा है कि हमारे सभी गुरु–भाई अपने हृदय–मन्दिर में श्रद्धेय श्री गुरुदेवजी को स्थित करके जीवन के वास्तविक अर्थ को समझें और हर प्रकार से आनन्दित हों।

गुरु महिमा

—अनिल दुबे

संसार का कोई भी कार्य बिना अनुभवी गुरु के सफल नहीं होता, गुरु ही शिष्य की आँखें खोलकर व उसको ठीक मार्ग बतलाकर लक्ष्य स्थान पर सुखपूर्वक पहुँचा देते हैं।

यही कारण है कि हिन्दु समाज में गुरु की महिमा व गुरु का पद बहुत ऊँचा है। गुरु और ईश्वर में कोई भेद नहीं माना जाता बल्कि शिष्य के लिए गुरु ईश्वर से भी बढ़कर है। श्रीमद्भागवत् गीता में लिखा है कि गुरु के उपदेशानुसार हृदय में ध्यान करने से नारद जी को भगवान के दर्शन हुए। जगतगुरु श्री शिवजी की कृपा से साधक को अपने अदृश्य सद्गुरु के हृदय में ही दर्शन होते हैं और उनके तेज के प्रकाश से अन्तर में उनसे सम्बन्ध हो जाता है। श्री सद्गुरु योग की यथार्थ उच्चदीक्षा द्वारा साधक का दैवी प्रकृति के प्रकाश के साथ सम्बन्ध करा देते हैं। जिस प्रकाश की सहायता से श्री सद्गुरु साधक को अविद्यान्धकार से पार करके उसके इष्टदेव में उसे समर्पित और मुक्त कर देते हैं। यह सद्गुरु की कृपा के बिना कदापि सम्भव नहीं।

श्री शिवजी का सद्गुरु होना तो सबको विदित ही है। गुरु गीता आदि में गुरु का वर्णन इस प्रकार आया है कि गुरु मिलते ही साधक को ज्ञान चर्चा देकर अज्ञानान्धकार को दूर करके उसे ब्रह्म को स्वीकार करा देते हैं। गुरु स्वयं त्रिमूर्ति और परब्रह्म के रूप हैं।

श्रीगोस्वामी तुलसी दास जी अपने गुरु को वंदना करते हैं—

वन्दे बोद्यमंयं नित्यं गुरूं शङ्कर रूपिणम्,
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते।

अर्थात्— (अहं मैं (गुरू) अपने गुरु को (बन्दे) वन्दना करता हूँ कैसे गुरु महाराज वोद्यमंय) विज्ञान स्वरूप है। फिर कैसे हैं कि (नित्यम्) नित्य हैं। जरा मरण रहित वेदान्त निष्ठ है और शंकर रूपिणम् शंकरोतीति शंकर कल्याण रूप है। साक्षात् शिवरूप है (हिमयाश्रित) निश्चय जिनके आश्रित होकर (वक्रचंदोपि) टेडा चन्द्रमा भी (सर्वत्र बंधते) सब स्थान में स्तुति किया जाता है।

रामायण में—

बन्दौ गुरुपद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु बचन रविकर निकर।।

गुरु के चरण कमलों को नमस्कार करता हूँ कैसे गुरुजी हो (कृपासिंधु) दया के समुद्र हैं कैसे हैं (नर रूप हरि) मनुष्य रूप धारण किये साक्षात् विष्णु भगवान हैं और कैसे हैं (महामोह तम पुंज) महा मोह रूपी घने अंधकार के ढेर को (जासुवचन) जिन गुरुजी महाराज का वचन (रविकर निकर) सूर्य की किरणों का समूह है अर्थात् जिस प्रकार सूर्य की किरणों से अंधकार मिट जाता है उसी प्रकार गुरु के वचन से हृदय में जो अज्ञान का अंधकार है वह दूर हो जाता है।

गुरुब्रह्मा गुरु विष्णु—अर्थात् गुरु ही ब्रह्मा है गुरु ही विष्णु है।

गुरु ही साक्षात् महेश्वर है। उन गुरुदेव को नमस्कार है।

ब्रह्मानंद परमं सुखदं केवलं ज्ञानमूर्ति—सद्गुरु और ईश्वर में कोई भेद नहीं है अतः सद्गुरु सदैव वन्दनीय हैं।

भवसागर से पार होने के लिए गुरु ही एक मात्र मार्ग दर्शक है

गुरु बिनु भवनिधि तरई न कोई।
जो विरंचि शंकर सम होई।।

गुरु की मुस्कान साधक के अहंकार को मारती है और क्रोध पाप को शमन करता है गुरु के बिना अध्यात्मक की भूमि में प्रवेश नहीं मिलता गुरु ही गोविन्द की सन्निधि प्रदान करते हैं।

ऋषि और सिद्धगण प्रायः शरीर त्याग नहीं करते वे तो अमर हैं लिंग पुराण में सातवें अध्याय में उन सद्गुरुओं का वर्णन योगाचार्य के रूप में आया है और उसमें उनके शिष्यों का भी उल्लेख है। उसमें कहा गया है कि उन लोगों का वास स्थान हिमालय और सुमेरू पर्वत में सिद्ध आश्रम से कहा जाता है।

इन सद्गुरुओं की कृपा के बिना मंत्रसिद्धि नहीं हो सकती। क्योंकि उस मंत्र के यथार्थ अविष्कारक वही हैं। सिद्ध योगी अदृश्य भाव से सभी जिज्ञासुओं की सहायता उनकी योग्यतानुसार करते हैं और उपयुक्त समय पर प्रत्यक्ष दर्शन देकर योग दीक्षा देते हैं। अतः यह लोग योग्य साधकों को चुनकर अपने भावी कार्य के लिए तैयार कर रहे हैं। अधिकांश साधकों को कुछ दिन साधना करने के बाद यदि वह शैव हो तो स्वप्न में शिवमूर्ति, शिवलिंग आदि के दर्शन होते रहते हैं।

शास्त्र और ऋषि मुनियों ने एक स्वर में गुरु को ब्रह्म स्वरूप ही माना है।

गुरु गोविन्द दोनों खड़े किसके लागू पाय,
बलिहारी गुरुदेव की जिन गोविन्द दियो लखाय।

गुरु में जैसे गुण होने चाहिए यद्यपि वैसे गुण का मिलना कठिन है। परन्तु जिसको ज्ञान की वास्तविक जिज्ञासा है, जो सद्गुरु को पाने के लिए सचमुच व्याकुल है उसके लिए उपयुक्त गुरु का मिलना भी दुर्लभ नहीं है। यदि आप सच्चे जिज्ञासु हैं तो आपको गुरु के खोजने की आवश्यकता नहीं। यदि आप दृढ़ श्रद्धा और भक्ति के साथ भगवान का भजन, आराधना, जप, तप आदि साधना करते जायेंगे तो आप गुरु को अपने पास स्वयं उपस्थित पायेंगे। परन्तु पहले आपको निम्नलिखित षट साधन सम्पत्ति प्राप्त कर लेना अत्यन्त आवश्यक है।

1. **शम**—अन्तर इन्द्रियाँ (मन, बुद्धि आदि) को वशीभूत करना।

2. **दम**—बाह्य इन्द्रियों का निरोध करना।

3. **उपरति**—विषयों से चित्त का हट जाना।

4. **तितिक्षा**—इन्द्रिय सहिष्णुता अर्थात् सुख–दुःख, हानि–लाभ, इन सब को समान भाव से ग्रहण करना।

5. **श्रद्धा**—गुरु और वेदान्त वाक्यों पर अटल विश्वास।

6. **समाधान**—भगवान में एकता इन बातों के पूरी हो जाने पर गुरु ही क्या पीछे–पीछे हरि फिरते रहते हैं।

सारांश यह है कि महर्षि और सिद्धगण वर्तमान हैं और उनका ज्ञान, भक्ति, योग आदि का लोगों में प्रचार करना ही एक मात्र कार्य है। इस कारण इस ऋषि ऋण से मुक्त होने के लिए प्रतिदिन ध्यान जप करना नित्यकर्म का एक प्रधान अंग माना जाता है।

इस घोर कलिकाल में हम सभी परम सौभाग्यशाली हैं कि हमें ऐसे गुरुदेव का सानिध्य मिला है यदि हम उनकी आज्ञा का पालन नहीं कर पाते तो हम आत्म हत्यारे कहलायेंगे।

जीवन उद्देश्य को समझो

— श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज

जीवन उद्देश्य क्या है? खाना पीना, पचाना, सांस लेना आदि शरीर में नित्य होने वाले काम मात्र ही क्या जीवन है? अथवा क्या धन सम्पत्ति या नाम यश की प्राप्ति के लिए तरकीबों और उपायों का सोचना मात्र ही जीवन है? अथवा सृष्टि की परम्परा को चलाने के लिए सन्तोनोत्पत्ति करना ही जीवन है? वैज्ञानिक लोग जीवन का कुछ भिन्न ही अर्थ लगाते हैं? और श्री शङ्कराचार्य सरीखे दार्शनिक तो बिल्कुल ही भिन्न अर्थ लगाते हैं।

जीवन दो प्रकार का होता है, एक तो भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। वैज्ञानिकों का कथन है कि विचारना, जानना, इच्छा करना, भोजन करना और उसका परिपाक करना, सांस लेना इत्यादि जो कार्य हैं वही जीवन है। परन्तु वह जीवन अमर नहीं होता ऐसा जीवन दुःख, सुख, चिन्ता, आपत्ति, विपत्ति, पाप, बुढ़ापा, रोग इत्यादि का आखेट बना रहता है। अतएव प्राचीन महर्षियों, योगियों और तपस्वियों ने (जिन्होंने अपने चित्त और इन्द्रियों को अपने वश में करके त्याग और तप, वैराग्य और अभ्यास इत्यादि के बल से, अपने आत्मा को पहचान लिया है) निश्चयपूर्वक कहा है कि जो आत्मा में रत है केवल मात्र वही स्थायी और असीम आनन्द एवं अमरतत्व प्राप्त कर सकता है। उन्होंने मनुष्यों के भिन्न–भिन्न स्वभाव, योग्यता और रुचि के अनुसार आत्म–साक्षात्कार के लिए विभिन्न निश्चित मार्ग बतलाया है। जिन लोगों को ऐसे महात्माओं में, वेदों में और गुरु के वचनों में अटूट श्रद्धा है वे आध्यात्मिक और सत्य के मार्ग पर निर्भीक विचरते हैं, और स्वतन्त्रता , पूर्णता या मोक्ष प्राप्त करते हैं। वे लौट कर फिर मृत्युलोक में नहीं आते हैं। जड़ और चेतन अभिन्न है। शक्ति और शक्त एक ही हैं। ब्रह्म व माया अभिन्न और एक है। ब्रह्ममय शाश्वत जीवन प्राप्त करने के लिए भौतिक जीवन एक निश्चित साधन है। संसार आपका एक सर्वश्रेष्ठ शिक्षक है, पंचतत्व आपके गुरु हैं। प्रकृति आपकी माता व पथ–प्रदर्शिका है, यही आपकी 'मूक–शिक्षिका' है। यह संसार दया, क्षमा, सहिष्णुता, विश्व प्रेम, उदारता, साहस, धैर्य, महत्वाकांक्षा इत्यादि दिव्य गुणों के विकास के लिए एक सर्वश्रेष्ठ शिक्षालय है। यह संसार आसुरी स्वभाव से युद्ध करने के लिए एक अखाड़ा है और अपने भीतर की दैवा–शक्ति का प्रकाश में लाने का एक दिव्य क्षेत्र है। गीता के अनुसार दिव्य पुरुष सच्चिदानन्द में या अपने ही स्वरूप में स्थिर रहते हैं। यही मानव–जीवन का ध्येय एवं परम् उद्देश्य है। यही अन्तिम लक्ष्य है, जिसके अनेक नाम यथा–निर्वाण,

परमगति, परमधाम और ब्राह्मी–स्थिति हैं। आत्मसाक्षात्कार के लिए प्रयत्न करना ही मनुष्य का परम कर्त्तव्य है।

परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि हम इस भौतिक जीवन की उपेक्षा करें। भौतिक जगत् भी परमेश्वर या ब्रह्म का ही स्वरूप है जिसको कि उसने अपनी लीला के लिए बनाया है। अग्नि और उष्णता, बरफ और शीत, पुष्प और सुगन्धि की भाँति जड़ योगवाशिष्ठ की मुख्य शिक्षा यही है कि मनुष्य को संसार में रहते हुए आत्म–साक्षात्कार करना चाहिए। जल में कमलपत्र की तरह–संसार में रहते हुए भी उसके बाहर रहिए। स्वार्थ, काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, आदि नीच आसुरी स्वभाव को त्याग कर मानसिक त्याग व आत्म–बलिदान का दिव्य स्वभाव धारण करिए।

क्या जीवन में खाने पीने और सोने से अधिक उत्तम अन्य कोई कार्य (उद्देश्य) है ही नहीं? मानव–योनि प्राप्त करना दुष्कर है, अतएव इसी जीवन में आत्मा को प्राप्त करने की भरपूर चेष्टा करिये। राजा महाराजाओं को भी काल कवलित कर लेता है। आज युधिष्ठिर, अशोक, वाल्मीकि, शेक्सपीयर, नेपोलियन आदि कहां हैं? इसीलिए योगिक साधनाओं में लग जाइये, तभी आप परमानन्द की प्राप्ति कर सकेंगे। ताश, सिनेमा, धूम्रपान में व्यर्थ समय को बिताने से क्या आपको असली शान्ति मिल सकती है? इस सांसारिक जीवन, इन्द्रिय–लोलुपता और विषय–वासना के क्षणिक सुख में भटकते रहने से क्या आपको सच्चे सुख का अनुभव हो सकता है? आपस के लड़ाई झगड़े में या व्यर्थ के बकवास में क्या आपको सच्चा आनन्द मिल सकता है?

अपने आदर्श और लक्ष्य तक पहुँचने के लिए संग्राम करते रहना ही जिन्दगी है। इस संग्राम में विजय प्राप्त करना ही जीवन है। अनेक प्रकार की जागृतियों को ही जीवन कहते हैं। मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करिये। ये ही आपके असली शत्रु हैं। अपनी बाह्य और आंतरिक प्रकृति पर विजय प्राप्त करिये। अपनी पुरानी बुरी आदतों, कुविचारों, कुसंस्कारों और कुवासनाओं को अवश्य जानना होगा, इन पैशाचिक शक्तियों से युद्ध करना और विजय प्राप्त करनी होगी। अधःपतन की ओर ले जाने वाली वासनाओं पर पूर्ण नियन्त्रण रखना होगा।

आपका जन्म ही आत्म–साक्षात्कार करने के लिए हुआ है। नियमित रूप से सङ्कीर्तन करिये और आत्मिक सुख का अनुभव करिये। निष्काम कर्म के द्वारा अपने मन और बुद्धि को शुद्ध करिए। इन्द्रिय–निग्रह से अपने ही स्वरूप में स्थित होइए। जीवन–संग्राम में जब आप पर प्रतिदिन चोटें पड़ती हैं, जब आप धक्के खाते हैं, तभी मन आध्यात्मिक पथ की ओर ठीक झुकता है और सांसारिक विषयों से अन्यमनस्कता एवं अरुचि उत्पन्न होती है। इस प्रपंच से

उद्धार पाने की उत्कण्ठा जागृत होती है, विवेक और वैराग्य होता है। अतएव गम्भीर धारणा और ध्यान में लग जाइये।

मनुष्य की आयु अल्प है और समय तीव्र गति से चला जा रहा है। संसार विपदाओं से भरा है। अतएव अविद्या ग्रन्थि को काटकर निर्वाणिक आनन्दामृत को छक कर पान करिए।

आध्यात्मिक जीवन निरा गल्प नहीं है केवल आवेश मात्र नहीं है। यही सच्चा आत्म–स्वरूप जीवन है; यह विशुद्ध आनन्द और सुख का अनुपम अनुभव है। इसी को पूर्णता–प्राप्त जीवन कहते हैं। एक स्थिति ऐसी होती है जहां सदा शाश्वत शांति और केवल आनन्द ही आनन्द है; परमानन्द है। वहां न तो मृत्यु है और न वासनायें ही, वहां न दुःख है न दर्द, न भ्रम है न शंका। क्या आप इस अनुपम अक्षय आनन्द और 'परम–सुख' के अमर–पद की प्राप्ति के लिए लालायित नहीं हैं? यदि हैं तो आइये अपने मन और इन्द्रियों पर संयम रखिए सद्गुणों को सीखिए, आत्मा के सच्चे स्वरूप को जानने की चेष्टा करिये, आत्म तत्व का नियमित रूप से ध्यान करिये। तभी आप उस अतीव गम्भीर, असीम आनन्द एवं अमरत्व को पा सकेंगे, केवल तभी आप अमरपद तक पहुंच सकेंगे। इस शरीर को ही आत्मा समझ लेना सबसे बड़ा पाप है। इस भ्रमात्मक भाव को त्याग दीजिए। सांसारिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उपाय करना, तरकीबों को सोचना विचारना, झूठे मनसूबे बांधना, ख्याली पुलाव बनाना छोड़िए, चिर–पालित मायाविनी आशाओं को तिलाञ्जलि दीजिए। वासनाओं और इच्छाओं का दमन कर उनसे ऊपर उठिए। बुद्धि से काम लीजिए। उपनिषदों का मननपूर्वक अध्ययन करिए। नियमित रूप से नित्य निदिध्यासन करिए। अविद्या और अज्ञान के गहन अन्धकूप से बाहर निकलिए और ज्ञानरूपी सूर्य की जगमगाती ज्योति में स्नान करिये। इस ज्ञानयज्ञ में दूसरों को भी साथी बनाइये। अपवित्र इच्छाएँ और अविद्या आपको बहका लेती हैं। अतः इसे भी मत भूलिए कि मानव–जीवन का मुख्य उद्देश्य और अन्तिम लक्ष्य आत्म–साक्षात्कार करना ही है। झूठे बाह्य आडम्बरों और माया के मिथ्या प्रपंचों में मत फँसिये। कल्पना के मिथ्या स्वप्नों से जागिये और थोथे, सराहनीय प्रलोभनों के जाल में न फँसकर ठोस और जीती–जागती असलियत को ही पकड़िये। अपनी आत्मा से प्रेम कीजिए क्योंकि आत्मा ही परमात्मा या ब्रह्म है, यही सजीव मूर्तिमान सत्य है। आत्मा ही शाश्वत है। अतः आत्मा में ही स्थित होइये और 'तत्वमसि' आप ही ब्रह्म हैं इसे पहिचानिए। यही वास्तविक जीवन है।

कर्मयोग का अभ्यास जिज्ञासु के मन को आत्म–ज्ञान ग्रहण करने के योग्य बनाता है। और उसे वेदान्त के अध्ययन का योग्य अधिकारी बना देता है। कर्मयोग की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के पूर्व ही मूढ़ मानव 'ज्ञान–योग' के अभ्यास में असमय ही कूद पड़ते हैं। यही

कारण है ऐसे लोग सत्य की प्राप्ति में बुरी तरह असफल होते हैं। उनका मन अपवित्र रह जाता है तथा अनुकूल और प्रतिकूल भावनाओं से भरा रहता है। वे ब्रह्म की कोरी बात ही बात करते हैं, तथा व्यर्थ बकवास, शुष्क वाद–विवाद और तत्वहीन तर्क–वितर्क में फँसे रहते हैं। उनका दार्शनिक ज्ञान उनकी जिह्वा तक ही सीमित रहता है या यों कहिए कि 'वे लोग केवल मौखिक–वेदान्ती ही हैं। आवश्यकता तो ऐसे वेदान्त की है जिसके द्वारा सबमें आत्मभाव रखते हुए देश और मानव–समाज की अनवरत निःस्वार्थ सेवा क्रियात्मक रूप से हो सके।

अपने हृदय में प्रेम की ज्योति जगाइये। सबको प्यार करिए। अपनी प्रगाढ़ प्रेम की बाहुओं से प्राणीमात्र को आलिंगन करिये। प्रेम का ऐसा रहस्यमय दिव्य सूत्र हैं जो सबके हृदयों को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' समझकर एक में बाँध लेता है। प्रेम ऐसी पीड़ानाशक स्वर्गीय महौषधि है जिसमें जादू की सी सामर्थ्य है। अपने प्रत्येक काम को विशुद्ध प्रेममय बनाइये। लोभ, धूर्तता, छल–कपट और स्वार्थ–परता का हनन कीजिए। अनवरत दयालुता के कार्यों से ही अमरत्व की प्राप्ति हो सकती है। प्रेम में सने हुए हृदय से, सतत् सेवा करने से क्रोध, द्रोह, ईर्ष्या आदि दूर होते हैं। दयालुता से भरे हुए कार्य करने से आपको अधिक बल, आनन्द और अधिक सन्तोष की प्राप्ति होगी।

❀❀❀

अनमोल बोल

इस संसार में असंख्य गड्ढे और खाइयाँ हैं। उनमें गिरने से बचने के लिये हमें चाहिए कि भगवान को सदा साथ रखें, तभी हमारी रक्षा हो सकती है।

❀ ❀ ❀

भगवान दूर हो तो अखण्ड प्रार्थना अशक्य हो जाती है। ध्यान–मार्ग से भगवान को अपने पास रखो। ध्यान के लिए भी अभ्यास की नितान्त आवश्यकता होती है।

श्री गणाधिपतये नमः

–द्वारका प्रसाद शर्मा

निम्नलिखित एकादश छन्दों की संरचना श्री गुरूदेव की महिमा में करने का मुझ अकिञ्चन द्वारा प्रयास किया गया है। यद्यपि मेरा तो यही विश्वास है कि उन्हीं के कृपाप्रसाद से लेखनी में गतिशीलता तथा शब्दों का निस्सरण अविराम अथवा धारा प्रवाह रूप में स्वतः ही उद्‌गीर्ण होता रहता है। परमाराध्य श्री गुरूदेव को शतशः प्रणाम के पश्चात् तथो छन्दों को सुधी पाठकवृन्द के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ। उन पाठकों के निमित्त जो देववाणी से अभिज्ञ नहीं हैं, हिन्दी भाषानुवाद भी प्रत्येक श्लोक के नीचे लिख दिया गया है जिससे समस्त पाठक वृन्द लाभान्वित हो सकेंगे। यदि किंचिन्मात्र भी इन छन्दों से सुखानुभूति अथवा रसानुभूति उपलब्ध होगी तो उसे मैं प्रभु का प्रसाद ही मानूंगा। अन्यथा, प्रभुजी के गुणगान अथवा उनके प्रति स्तवन के निमित्त तो हम सब सम्भाव से नतमस्तक हैं ही। अस्तु।

(1) भवे त्रितापैः परितप्यमानान्, निस्सार विषये सुखमीहमानान्।
जनान् वीक्ष्य दुःखैः परिदह्यमानान्, योगे नियोक्तुं गुरुरागतो नः।।

इस संसार में त्रितापों (आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक) से संतप्तजनों के निमित्त, और ऐसे जनों के लिए जो विषयभोग में ही सुख की चेष्टायें करते रहते हैं तथा उन मनुष्यों के कल्याण के लिए जो विविध प्रकार के दुःखों से दग्ध हो रहे हैं, ऐसे ही दुःखित तथा पीड़ित जनसमुदाय के कल्याणार्थ ही उन्हें योग मार्ग में प्रकृत करने हेतु हमारे श्री सद्‌गुरुदेव का प्राकट्य हुआ है।

(2) लीलावपुस्सु भगवानपि नैकवारं, युगे युगे भिन्न विभिन्न रूपे।
आगत्य भुवि पापमपाचकार, जानाति कस्तस्य महामहिम्नः।।

युग–युगान्तरों में अनेक बार भगवान ने भी लीला शरीरों को धारण कर भिन्न–भिन्न रूपों में अवतरित होकर आवश्यकतानुसार इस धरातल में व्याप्त पापों व अनाचारों को अवश्य निवारित किया है। उस परमेश्वर की महान् महिमाओं को कौन जान सकता है।

(3) स एव कर्त्ता स्वयमेव धर्ता, स्वयं च सृष्टि हरते निजेच्छया।
अतः स्वयं यः कर्ता च भर्त्ता, हर्त्ता स्वयं किं कथनीयमितरत्।।

वह (परमेश्वर) स्वयं करने वाले हैं, स्वयं ही वे सृष्टि के धारण करने वाले भी हैं और

स्वेच्छानुकूल वे ही इस सृष्टि के संहारकर्ता भी हैं। क्योंकि वे स्वयं ही जब कर्त्ता हैं, स्वयं ही जब वे भरण–पोषण कर्ता हैं और स्वयं ही वे समग्र–सृष्टि के संहर्ता भी होते हैं तो इस विषय में इसके अतिरिक्त कहने के लिए शेष रह ही क्या जाता है। श्री मद्भगवद्गीता में भगवद् वचन भी हैं–

'मत्तः परतरं नान्यद किंचिदेस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव। (गीता–अध्याय 7 का 7वाँ श्लोक)
उपद्रष्टाऽनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेतिचाप्युक्तो, देहेऽस्मिन् पुरुषः परः।। (गीता, अ. 13 श्लोक 22)
अहंवैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापान समायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।। (गीता, अ. 15 श्लोक 14)
सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो, मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो, वेदान्तकृत् वेदविदेव चाहम्।। (गीता, अ. 15 श्लोक 15)
ईश्वरः संर्वभूतानां, हृद्शेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्व भूतानि, यन्त्रारुढ़ानि मायया। (गीता, अ. 18, श्लोक 61)

(4) **कृष्णः स्वयं षोडशभिः कलाभिः, धृत्वा शरीरं समलञ्चकार भूः।**
किं किं कृतं तेन न योगवपुषा, आख्यायितो भागवते समग्रम्।।

भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं 16 कलाओं से परिपूर्ण हो इस पृथ्वी तल पर शरीर धारण किया था। अपने योगमय शरीर के द्वारा उन्होंने किन–किन अलौकिक कृत्यों को किया, इन सबका वर्णन श्रीमद्भागवत् महापुराण में उपलब्ध है।

(5) **योगस्य महिमा भवितुं क ईशः, स एव ज्ञायेत् प्रविशेत स्वयं यः।**
श्रेष्ठो नरः सोऽपि न तस्य पारं, गन्तुं क्षमः स्यात् कृपया बिन गुरोः।।

इस अद्भुत एवं प्रभावी योग की महिमा को बताने की सामर्थ्य है किसमें, इसको वही जान पाता है जो इसमें निरन्तर रममाण व अभ्यास परायण स्वयमेव रहे। यह कोई पठन–पाठन योग्य विषय न होकर स्वयं सतत् क्रियायोग व अनुभूति गम्य विषय है। आजकल तो योग को योगा कहकर हाथ–पैर को ऊँचा–नीचा करके शरीर संचालन मात्र ही इसकी व्याख्या हो गई है। योग के विषय में भगवान पतञ्जलि महाराज की प्रथम व द्वितीय सूत्रों की संरचना कितनी विशद् व व्यापक है इसका मनन व अनुसरण करने की आज के युग में भला किसे फुरसत है और करना तो बड़ी दूर की बात हो जाती है। वे कहते हैं–**योगश्चित्तवृत्ति निरोधः–तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्–इति।**

उत्तम आचरणशील श्रेष्ठ व्यक्ति भी इसके पार को बिना सद्गुरुदेव की कृपा के नहीं पा

सकता। सद्गुरुदेव ही इस योग (आत्म–परमात्म मिलन) को कृपा पूर्वक बताने में समर्थ हैं।

(6) अस्मद् गुरुवां परम हि श्रद्धा, यथा गुरौ तावतीशेऽपि कृष्णे।
अतस्तेस्य महिमा सुमहानभूदिह, कः पारयेत्तस्य परं हि पारम्।।

जैसे कि आप्त वचन हैं

यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

जिस किसी भी व्यक्ति की ईश्वर में परम भक्ति अथवा श्रद्धा हुआ करती है, वैसी ही अपने गुरुदेव में भी यदि वर्तमान रहा करती है तब ही उस व्यक्ति के निमित्त महापुरुष या महात्माजन ज्ञातव्य अर्थों को उजागर कर दिया करते हैं।

हमारे सद्गुरुदेव की भगवान श्री कृष्ण के प्रति अनन्य श्रद्धा रही और अपने सद्गुरुदेव (प्रभु श्री रामलाल जी महाराज) के चरणारविन्द के तो चञ्चरीक समान ही अनुराग व श्रद्धा से प्रतिक्षण परिपूर्ण रहा करते थे। उनकी इस अनन्य निष्ठा व श्रद्धा का दशांश भी यदि हम अनुपालन कर लेंगे तो निश्चय ही हमें भी यथार्थ बोध–स्वरूपानुभूति, विलम्ब से ही सही, हो सकती है। हमारे सद्गुरुदेव तो श्रद्धा व करुणा के मूर्तिमान स्वरूप थे, हम उन के द्वारा निर्दिष्ट पथ का अनुसरण ही करते रहें तो हमारा जीवन कृतकृत्य व कल्याणमय होगा इसमें लेशमात्र संशय नहीं है।

(7) यावत् यदा याति स्मृतिं गुरुर्नः सौम्येक्षणः स्मितमुखः श्रियमादधानः।
लला–लली मधुरया गिरया भणन् सः, कण्ठः सगद्गद् इवाश्रुभरे न नेत्रे।।

श्री सद्गुरुदेव की हमें जब भी याद आती है तो तत्क्षण हमें उनकी सौम्य दृष्टि और सदा मुस्कुराता मुखमण्डल और आभा व शोभा से समन्वित उनकी देह सन्मुख उपस्थित हो जाया करती है। जब–जब भी उनके सान्निध्य को सुयोग, व सौभाग्य रहा है तो उनका मधुर शब्दोच्चार 'लला' या 'लली' कहकर सुनना या कहना अब भी हमें स्मृति में आते ही कण्ठ को अवरुद्ध सा कर दिया करता है और दोनों नेत्र अश्रुपूर्ण हो जाते हैं। यह थी उनकी अपने शिष्यों के प्रति स्नेह की अतिशयता जो हम शिष्यवृन्द को सदा–सर्वदा मन्त्रमुग्ध सी कर दिया करती है।

(8) क्षणं क्षणं काञ्चनसन्निभं वपुः तप्तं सदा योगमयेन वह्निना।
लब्धं समस्तं व्यतरत् जनेभ्यः शिष्येभ्य एव सकलेभ्य अहो महान् गुरुः।।

हमारे सद्गुरुदेव ने अपने स्वर्ण सदृश शरीर को क्षण–प्रतिक्षण योगाग्नि में खूब तपाया है। उन्होंने इस योग पथ में जो–जो महान् उपलब्धियाँ प्राप्त की, उनको जन–जन में बाँटा

और अपने समस्त शिष्य समुदाय में भी खूब वितरित किया। वास्तव में, हमारे गुरुदेव महान हैं।

(9) **मयापि दृष्टा च तथाऽनुभूता कृपा कृता, या फलिता गिरा च।**
कृपा मत्कृता नैव गुरोः कृपेषा, हलवा गुरोः चम्मचोऽकिंचनोऽहम्।।

यह तो मैंने भी स्वयं देखा है तथा अनुभव किया है कि हमारे सद्गुरुदेव कृपा की वर्षा करते रहते थे। क्योंकि वे समर्थ गुरु थे। और जब भी कृतज्ञ शिष्य अथवा याचकजन वृन्द उनकी कृपा द्वारा कार्यसिद्धि पर उनके प्रति श्रद्धा सुमन ले नतशिर हो प्रस्तुत होते और उनकी कृपा का बखान करने लगते तो वे करुणार्णव विनयमूर्ति यही प्रायः कह देते कि भई लला हलवा तो वे ही आनन्दकन्द प्रभुजी हैं मैं तो मात्र एक चम्मच की तरह हूँ जो उनके प्रसाद को वितरित भर कर रहा हूँ। देखिये, विचार करिये, सब प्रकार की सामर्थ्य से भरपूर होने पर अहंकृति की भावना से अस्पृष्ट, प्रशंसा आदि से परहेज करने वाले व्यक्तित्व क्या सुलभ हैं। ऐसे सद्गुरुदेव के सान्निध्य के सन्निधि प्राप्त कर हम सब कृतार्थ एवं धन्य हैं। हमें उनके किसी एक सद्गुण का तो अवश्य अनुकरण करना चाहिए। तभी सच्चे अर्थों में हम उनके शिष्यत्व की सुपात्रता की श्रेणी में आ पाते हैं।

(10) **दत्तं प्रदत्तं गुरुणा न किं किं, कल्पद्रुमः कामधेनुः स एव।**
मोघा गिरा नैव बभूव दृष्टा, ऋतम्भरा, भ्राजमाना सदासीत्।।

हमें सद्गुरु देव ने क्या–क्या नहीं बख्शा है। वे ही कल्पवृक्ष हैं और वे ही काम धेनु हैं। उनके मुखारविन्द से निस्सृता वाणी कभी विफला होती नहीं पाई है। उनकी वाणी ऋतम्भरा सदैव रही है। वे पातञ्जल सूत्रों के एक–एक सूत्र के जीवन व मूर्तिमान् स्वरूप थे ही।

(11) **किं नास्ति सम्प्राप्य महान्तमेतं, गुरुं स्वमहिमानमदर्शयन्तम्।**
कीर्तिर्गुरुणां प्रसरेत् दिशस्सु, शिष्या यन्नार्वाय सुकार्यमेतत्।।

ऐसे महान गुरु को प्राप्त कर जिन्होंने अपनी महामहिमा को कभी उद्घोषित अथवा प्रदर्शित किया ही नहीं, तो क्या ऐसे सद्गुरुदेव की कीर्ति व यशस का समस्त दिशाओं में प्रचुर प्रसार हो, यही हम सब शिष्यों का सुन्दर व सुपुनीत कर्त्तव्य है। हम इस ओर भी प्रवृत्त हों, यही हमारा अभीष्ट लक्ष्य होना चाहिए। इति शम्।

• योग–आसन

सिंहासन

गुल्फौ च वृषणस्याधः,
सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत्।
दक्षिणे सव्य गुल्फं च,
दक्ष गुल्फं तु सव्य के।
हस्तौ तु जान्वोः संस्थाप्य,
स्वांगुली सम्प्रसार्य च।
व्यात्त वक्त्रो निरीक्षेत,
नासाग्रे सु समाहितः।
सिंहासनं भवेदेतत्पूजितं योगिपुङ्गवै,
बन्ध त्रयं संस्थानं कुरुते–चासनोत्तम्।।

विधि– पहले सीधे स्वभाव बैठकर अपने पैरों के दोनों गुल्फों का (अर्थात टखने को) सीवनी के दायें और बायें लगाये, दाहिने भाग में बायें टखने (एड़ी गाँठ) को एवं बायें भाग में दाहिने टखने को लगायें। इसके बाद दोनों हाथों की अंगुलियों को खूब फैलाकर दृढ़ता के साथ अपने दोनों घुटनों पर जमा कर रखें, उसके बाद सिंह के समान मुख फैलाकर लपलपाती हुई जीभ को निकाल कर भ्रमध्य को देखें, इसी का नाम सिंहासन है।

समय– साधारण पूर्वोक्त नियमानुसार शनैः शनैः अभ्यास को बढ़ायें।

लाभ– इस आसन में सिंह के बल की धारणा करने से दिल की शक्ति बढ़ती है। जालन्धर बन्ध के फलस्वरुप मन की एकाग्रता स्वाभाविक है। उड्डियान बन्ध के फलस्वरुप जठराग्नि का बढ़ना, भूख अधिक लगना स्वाभाविक है। उड्डियान बन्ध के फलस्वरुप जठराग्नि का बढ़ना, भूख अधिक लगना स्वाभाविक है। उसके साथ–साथ यह पेट सम्बन्धी सभी प्रकार के वात रोगों का नाशक है। मूलबन्ध में अपान के उर्ध्वाकर्षण से और उपर से उड्डियान एवं जालन्धर बन्ध के लगने से प्राणापान गति रोधन होकर कुण्डलनी का बोधक है। सब प्रकार आरोग्यप्रद एवं शक्ति वर्धक है।

■■■

अमृत कण

नित्यो नित्यानां चेतनचेतनानाम्
एको बहूनांयो विदधाति कामान्

अर्थ– जो नित्यो में नित्य, चेतना में चेतन और अकेला ही बहुतों का भोग प्रदान करता है साख्ययोग द्वारा ज्ञातप्य उस सर्वकारण देवका जानकर (पुरुष) समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

◆ ◆ ◆

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं, नेमा विद्युतों भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्व, तस्य भासा सर्वोमदं विभाति।।

अर्थात् वहाँ सूर्य प्रकाशित नही होता न चन्द्र और तारें प्रकाशित होते है। और न यें बिजलियाँ ही चमकती है। फिर यह अग्नि तो कहाँ प्रकाशित हो सकता है ? ये सब उसके प्रकाशित होने से ही प्रकाशित होते है उसी के प्रकाश से ये सब प्रकाशित है।

◆ ◆ ◆

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढ़वत्

अर्थात् अपने देह को अरणि और प्रणव को उत्तरारणि करके हयानरूप मन्थन के अभ्यास से स्वप्रकाश परमात्मा को छिपे हुयें (अग्नि) के समान देखे। जैसे अरणि मन्थन से लकड़ियों से अग्नि प्राप्त की जाती है वैसे ही प्रणव के निरन्तर जाप से परमात्मा का प्राकट्य हो जाया करता है।

◆ ◆ ◆

अहं वृक्षस्य रेरिवा। कीर्तिः पृष्ट गिरेवि। उर्ध्वपवित्रो वाजिनीव
स्वस्मृतमस्मि। द्रविणाँ सवर्चसम्। सुमेधा अमृतोक्षितः।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/15-17 JUNE 2017

प्रेषण कार्यालय :
श्री सिद्धयुक्ता योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाँई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

सिद्धयुक्ता
योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/श्रीमती _____

_____

_____

□□□□□□

प्रणव की महिमा

प्रणवात् प्रभवो रुद्रः प्रणवात् प्रभवो हरिः।
प्रणवात् प्रभवो ब्रह्मा, प्रणव एव अवशिष्यते।।

अर्थात्

ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव तीनों की उत्पत्ति प्रणव अर्थात् ओंकार से है। और सबका प्रलय होने पर प्रणव ही शेष बच जाते हैं। यह प्रणव काल की सीमा का अतिक्रमण करके अखिल अण्ड ब्रह्माण्डों में व्याप्त है।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा